सुषम बेदी की १० कहानियाँ

प्राक्कथन

अभिव्यक्ति की नवीं सालगिरह पर सुषम बेदी की दस कहानियों के संग्रह का जाल-संस्करण तथा मुफ़्त पीडीएफ डाउनलोड प्रकाशित करना गर्व का विषय है। भारतीय अमरीकी हिंदी लेखिकाओं में वे विशिष्ट स्थान रखती हैं और वे उन गिने चुने रचनाकारों में से हैं जिनके लेखन को भारतीय साहित्य जगत में भी समुचित प्रतिष्ठा प्राप्त है। जाने माने हिंदी साहित्यकारों में वे पहले कुछ लोगों में से थीं जो अभिव्यक्ति के साथ जुड़े और दूसरों को इस ओर प्रेरित किया। उन्होंने न केवल अपनी पूर्वप्रकाशित कहानियाँ हमारे साथ बाँटी बल्कि हमारे विशेष महोत्सवों में भाग लेकर उनकी गरिमा भी बढ़ाई। लेखन के प्रति उनकी निष्ठा और वेब पर उनके सहयोग की हम सराहना करते हैं।

पिछले साल से हम डाउनलोड करने योग्य कुछ सुंदर पीडीएफ़ फाइलें नियमित रूप प्रकाशित कर रहे है, ताकि इन्हें इंटरनेट कनेक्शन बंद कर के भी पढ़ा जा सके और आपस में एक दूसरे को बाँटा जा सके। इस क्रम में यह तीसरी फ़ाइल है। भविष्य में इसी तरह गौरव गाथा, हास्य व्यंग्य तथा अन्य विषयों को प्रकाशित करने की योजना है। कुछ और लेखक भी जल्दी ही अपनी दस कहानियाँ पूरी करने वाले हैं, उनके भी वेब तथा पीडीएफ़ संस्करण जल्दी पाठकों के पास पहुँचें ऐसी कामना है। आशा है पाठकों को ये सुविधाजनक, रोचक और संग्रहणीय प्रतीत होंगे।

सुझावों और प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा में,

पूर्णिमा वर्मन

(संपादक अभिव्यक्ति अनुभूति)

teamabhi@abhivyakti-hindi.org

abhi_vyakti@hotmail.com

सुषम बेदी–एक परिचय

जन्म: १ जुलाई १९४५ को फीरोजपुर नामक शहर (पंजाब-भारत) में।

शिक्षा : एम. ए. हिंदी (दिल्ली विश्वविद्यालय) १९६६ में। तथा पी-एच. डी. पंजाब विश्वविद्यालय से १९७९ में। शोध कार्य का विषय- 'हिंदी नाट्य प्रयोग के संदर्भ में'। हिंदी, उर्दू, संस्कृत, पंजाबी, अंग्रेज़ी और फ्रेंच भाषाओं का ज्ञान।

कार्यक्षेत्र: हिंदी के समकालीन कथा और उपन्यास साहित्य में सुषम बेदी एक जाना-माना नाम हैं। उनकी पहली कहानी १९७८ में प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'कहानी' में प्रकाशित हुई और १९८४ से वे नियमित रूप से प्रकाशित होती रही हैं। उनकी रचनाओं में भारतीय और पश्चिमी सांस्कृति के बीच झूलते प्रवासी भारतीयों के मानसिक आंदोलन का सुंदर चित्रण हुआ है। रंगमंच, आकाशवाणी और दूरदर्शन की अभिनेत्री सुषम बेदी ने कमला नेहरू कॉलेज, दिल्ली (१९६६-७२) तथा पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़ (१९७४-७५) में अध्यापन किया। दिल्ली दूरदर्शन और रेडियो पर नाटकों तथा दूसरे सांस्कृतिक कार्यक्रमों में १९६२ से १९७२ तक काम किया। लखनऊ रेडियो से बचपन में जुड़ी रहीं (१९५७-१९६० तक)। १९७९ में वे संयुक्त राष्ट्र अमरीका में जा बसीं और १९८५ से कोलंबिया विश्वविद्यालय, न्यूयार्क में हिंदी भाषा और साहित्य की प्रोफेसर हैं। कंप्यूटर द्वारा भाषा शिक्षण के क्षेत्र में भी वे काम कर रही सुषम फ़िल्मों में अभिनय भी करती रही हैं। उन्होंने भाषा शिक्षण के लिए उपयोगी अनेक पुस्तकों की रचना की है। उनकी साहित्यिक सेवाओं के लिए उन्हें साहित्य अकादमी दिल्ली तथा हिंदी संस्थान लखनऊ द्वारा सम्मानित किया जा चुका है।

प्रकाशित कृतियाँ :

उपन्यास : हवन, लौटना, इतर, कतरा दर कतरा, नव भूम की रसकथा, गाथा अमरबेल की, मोरचे तथा मैने नाता तोड़ा।
कहानी संग्रह : चिड़िया और चील तथा सड़क की लय
शोधग्रंथ : हिंदी नाट्य प्रयोग के संदर्भ में।
इनमें अनेक रचनाओं के अंग्रेज़ी तथा उर्दू में अनुवाद हुए है।

संप्रति : कोलंबिया विश्वविद्यालय में कार्यरत।

संपर्क : sb12@columbia.edu

अनुक्रम

- अवसान ५
- अज़ेलिया के रंगीन फूल ११
- काला लिबास १८
- गुनहगार २८
- गुरुमाई ३४
- तीसरी दुनिया का मसीहा ३९
- वे दोनो ४७
- संगीत पार्टी ५८
- सड़क की लय ६९
- हवनशेष उर्फ़ किरदारों के अवतार ८०

अवसान

जिस तरह से दिवाकर जीता जा रहा था उसे बिलकुल अंदाज़ नहीं था कि कल को वह इस दुनियाँ में नहीं होगा। यों तो अपने जाने की ख़बर किसी को नहीं होती पर उसे ख़ासतौर से नहीं थी।

इसकी जायज़ वजह भी थी उसके पास। पहली बात तो यह कि जिस संसार के सर्वोन्नत देश में वह रह रहा था वहाँ छप्पन सत्तावन साल की उम्र जीवन का मध्य माना जाता है, अंत का सूचक नहीं। फिर सामान्य तौर पर उसकी सेहत भी ठीक-ठाक रहती थी। दूसरों की बीमारियाँ ठीक करते-करते अपनी नश्वरता की चिन्ता करने की भी फ़ुरसत नहीं मिलती थी उसको। यही बात मानकर उसने पचासवें में कदम रखते ही तीसरी शादी की थी। यों शादी तलाक आम बाते हैं इस देश में। पर वह यहाँ के अनलिखे नियमों के अनुसार हर सात साल बाद तलाक करता था और तलाक के पाँच साल के बाद ही अगली शादी। इस तरह उसके पाँच बच्चे भी पैदा हो चुके थे। जिनमें से चार अपनी अपनी दुनिया में थे। छे साल का छोटा लड़का उसकी तीसरी पत्नी हेलन से था।

शहर के प्रमुख चर्च में हो रही इस अंतिम क्रिया में शहर भर के तमाम लोग जमा थे। फूलों के ढेर सारे गुलदस्ते हॉल को महकाए थे, जिनकी ताज़गी और महक से मौत का अभिषेक किया जा रहा था। उन फूलों की जीवंतता देखते-देखते सहसा मौत से ध्यान हट जाता था। पर फिर महज उन फूलों की उपस्थिति मात्र ही उसका बरबस ध्यान दिला डालती थी। एक बड़े से लकड़ी के बक्से में रखा फूलों से ही सजा ढका दिवाकर का जीवन रिक्त शरीर मृत्यु के घट जाने को भुलावा कैसे दे सकता था?

पादरी बाइबल के सफों से डेविड का स्लाम पढ़ रहा था, "प्रभु मेरा चरवाहा है तो मुझे क्या कमी है, वह मुझे हरियाले मैदानों में लेटाता है, शांत जल की ओर ले जाता है वही मेरी आत्मा की रक्षा करता है और मुझे सही रास्ता दिखाता है।"
पादरी की आवाज़ में शांति है स्थिर जल की ही तरह। आवाज़ में दिलासा है कयामत का दिन स्वर्ग की कामना : मुक्त के लिए इतरलोक के श्रेयस्कर की कामना जीवितों के लिए एक लचर-सी तसल्ली। लोग मौत की अवश्यंभाविता से डरे, ख़ामोश, अपनी अपनी कुर्सियों पर अवस्थित।

शंकर को अजीब लग रहा था कि एक केवल वही हिन्दुस्तानी था। बाकी सब दिवाकर के डाक्टरी पेशे से जुड़े लोग थे - अस्पताल के साथी, कर्मचारी, डाक्टर, नर्सें, मरीज़ इसमें काले, हिस्पैनिक और गोरे सभी किस्म के लोग मौजूद थे। पिछले तीस बरसों से तो वह यहाँ काम कर रहा था। इसी शहर के सबसे बड़े अस्पताल का प्रमुख डाक्टर था। कितने ही मरीज़ों ने इससे जीवन पाया था जो हमेशा के लिए उसके शुक्रगुज़ार थे। उसकी तीनों पत्नियों के परिवार भी मौजूद थे।

दर असल पहले की दोनों पत्नियों के परिवारों और उनसे जन्मे अपने बच्चों के साथ अब भी उसका रिश्ता बना हुआ था। अभी भी वह उन बच्चों के कालेजों की फीस दे रहा था। उनके जन्मदिनों पर उपहार भेजता था और उन्हें खाने पर बाहर रेस्ट्राँ ले जाता था पर बच्चे फिर भी उसके न थे। वह उनके जीवन में एक बाहरी तत्व था।

जो किसी देनदार रिश्तेदार की तरह अपनी भलमनसाहत की वजह से मदद किए जा रहा था। इसके एवज में उसे उन बच्चों से प्यार नहीं मिलता था। हाँ वक्त पर पैसा न पहुँचने की शिकायत ज़रूर मिल जाती थी पर बेशक वे उससे उपकृत ज़रूर महसूस करते होंगे तभी उसके जन्मदिन या क्रिसमस पर वे उसे शुभकामनाओं का कार्ड ज़रूर भेज देते थे। आज भी वे सभी बच्चे अपनी माओं के परिवारों के साथ अंत्येष्टि में आए हुए थे। पर उसके अपने परिवार का कोई भी उसके मृत्यु संस्कार पर मौजूद नहीं था। रिश्तेदार भारत में ही थे। यों उनमें अब उसकी माँ और बहन ही बची थीं। यहीं पर कुछ मित्र थे जिनसे मिलना जुलना चलता रहता था।

वह ज़्यादा हिन्दोस्तानियों से नहीं मिलता था। पत्नी अमरीकी थी तो दोस्तों का समूह भी वैसा ही था। शंकर ही उसका करीबी हिन्दोस्तानी मूल का दोस्त था। दोनों मौलाना आज़ाद मेडिकल स्कूल के दिनों से ही एक दूसरे को जानते थे। उनकी आजतक दोस्ती बने रहने की शायद यह वजह भी थी कि शंकर की अमरीकी पत्नी के साथ उसकी पत्नी की निकटता थी। गोरों में आना जाना भी था और बच्चों का भी आपस में मिलना-मिलाना था।

अस्पताल से ही लाश सीधे फ्यूनेरल गृह में लाई गई थी और आज गिरिजाघर में सर्विस थी। वह नास्तिक था। इसलिए उसकी इसाई पत्नी को ऐसा करने में कुछ गलत नहीं लगा। दोनों की शादी भी कोर्ट में ही हुई थी। यों भी वह कहाँ किसी मंदिर के पुजारी को खोज कर क्रियाकर्म करवाती। शंकर ने कहा तो था कि वह पंडित का इंतज़ाम कर देगा। अब तो यहाँ काफी लोग बस गए हैं। अच्छा पंडित भी ढूँढा जा सकता है।
पर हेलन एकदम नर्वस होकर बोली थी, "प्लीज़ शंकर उस बखेड़े में मत डालो मुझे। जो ज़िन्दा होते हुए कभी हिन्दू नहीं बना अब उस पर यह सब यों लादना ज़रूरी है?"
"लेकिन..." और शंकर कुछ कह नहीं पाया था। विवाद का मौका नहीं था। वह दोस्त की पत्नी के लिए चीज़ों को आसान बनाना चाहता था। पहले ही शोक से सतायी हुई महिला को और कष्ट में नहीं डालना चाहता था। मुश्किल से सात साल तो हुए थे उसकी शादी को। दोनों का प्रेम विवाह था। हेलन दिवाकर से करीब बीस साल छोटी रही होगी। क्या पता था कि इतनी कम देर जीना था उसे? अचानक उसकी ज़िन्दगी में तो तूफ़ान आ गया था।

पर शंकर को मन में लगा था कि ब्राह्मण परिवार में पैदा होने वाला उसका दोस्त दिवाकर क्या इस इंतज़ाम से संतुष्ट होगा। शंकर खुद भी नास्तिक ही था पर फिर भी यह मानता था कि जो हिन्दू पैदा हुआ है वह हिन्दू ही रहता है सो देह संस्कार किसी भी दूसरे तरीके से क्यों?

लेकिन उसकी पत्नी ने भी हेलन की हाँ में हाँ मिलाते हुए कह डाला था कि यह तो ख़ाली सुविधा की बात है। चर्च का सारा इंतज़ाम साफ़ सुथरा था। वहाँ तो आए दिन फ्यूनेरल सर्विस होती ही हैं। आनेवालों को भी सुविधा रहेगी। पहचानी जगह है और फिर मंदिर कौन से इस तरह के कामों में अनुभवी हैं फालतू में ही घचपच होगी। हवन वगैरह की किसी को समझ भी नहीं। फिर उसके मित्र भी ज़्यादातर तो अमरीकी ही हैं। किसको समझ में आएँगे संस्कृत के श्लोक।

मन ही मन शंकर को दिवाकर पर गुस्सा भी आ रहा था। यों ही अचानक बिना बताए चल दिया यह सब तो उसके साथ डिस्कस करके जाना था। अब शंकर न तो उसकी पत्नी पर किसी तरह का ज़ोर डालना चाहता था न ही दोस्त से दग़ाबाज़ी। यों नास्तिक होते भी दोनों ने गीता महाभारत रामायण सब पढ़ रखे थे। गीता के तो कई श्लोक दोनों को ज़बानी रटे थे।

बल्कि अपनी ज़िन्दगी में संतुलन बनाए रखने के लिए कभी-कभी वे एक दूसरे के व्यवहार पर श्लोकों के ज़रिये टिप्पणी करते थे जैसे कि शंकर उसे कहता था, "भाई ये सारे बच्चों की कालेज और स्कूल की पढ़ाई का इतना भारी खर्च तुम्हारा सच्चा निष्काम कर्म ही मानना चाहिए। वर्ना बीवी को छोड़ने पर बच्चों को इतना सर चढ़ाने की क्या ज़रूरत है। तुम तो अभी भी पूरी निष्ठा से लगे हो।

दिवाकर हँसा था, "सबके अपने अपने कर्मों का फल है। वे अपने हक का ले रहे हैं और मैं अपना धर्म निभा रहा हूँ। फिर जब सात समंदर पार आकर मेरा धर्म तो भ्रष्ट हो ही गया है। उसकी एवज़ में इतनी दौलत आ रही है तो वे भी क्यों न उसका सुख भोगें। शायद यहीं कुछ खटकर अपनी योनि सुधार लूँ।"

एक बार किसी बात पर बड़ा गुस्सा था शंकर तो दिवाकर गीता के दूसरे अध्याय का बासठवाँ श्लोक गाने लगा था, "क्रोध से संमोह होता है और संमोह से स्मृतिनाश, स्मृति न रहने से विचार शक्ति का नाश होता है और बुद्धिनाश से सर्वनाश।" शंकर का गुस्सा दूर करने के लिए ही इस बाण का प्रयोग किया गया था और इसका असर हुआ भी। पर यह सब बौद्धिक प्रयास ही था। किसी आस्था का सबूत नहीं। बस अजीब बात यह थी कि खुद को नास्तिक कह कर भी उनकी शब्दावली, संदर्भ, सब हिन्दू शास्त्रों से ही जुड़े थे। और यह सब अनायास होता था।

मूल बात यह थी कि दिवाकर के समूचे व्यक्तित्व में एक उदारता थी। हर तरह के देने में खुलापन था। प्यार पैसा सलाह - यह और बात है कि अमरीकी पत्नियाँ होने के कारण वह अपने हिन्दुस्तान में बसे घरवालों को अपने यहाँ ज़्यादा बुला न पाता था पर वक्त बेवक्त पैसों की खुली मदद ज़रूर देता था। खुद जाकर उन्हें मिल भी आता था।

शंकर से हेलन ने ख़ास इल्तजा की थी, " क्या तुम उसकी माँ बहन को आने से रोक सकते हो? मुझ पर सबसे बड़ा उपकार यही होगा?"

शंकर को एकदम से धक्का लगा था। शायद यह समझ कर ही हेलन ने कहा था, "देखो शंकर एक तो यहाँ का ही मुझे सब कुछ अपने से सँभालना होता है ऊपर से माँ बहन के आने से मुझे उनकी भी सेवा परवरिश में लगना होगा। मैं इस वक्त तन और मन हर तरह से बहुत कमज़ोर महसूस कर रही हूँ फिर अब जब कि दिवाकर रहा ही नहीं तो मुझसे उन सबकी देखभाल का बोझ नहीं उठाया जाएगा। यों भी कौन सा ज़्यादा मिलना जुलना था। पाँच पाँच साल बाद तो मुश्किल से वह घर जाता था। और व्यक्तिगत रूप से मेरा तो उनसे कुछ लेना देना था नहीं। मैं तो एक बार से ज़्यादा उनसे कभी मिली ही नहीं।"

शंकर ने कहा, "वो तो तुम सही कह रही हो हेलन पर वे इसरार तो करेंगे ही। आखिर बेटे या भाई का चला जाना, मौत पर वे आना तो चाहेंगे ही। सगे तो ऐसे मौकों पर आते ही हैं।"

हेलन बोली, "मेरे पास पैसे नहीं हैं उनकी टिकटें भेजने के।"

"वह मैं दे दूँगा। वे शायद माँगेगे भी नहीं पैसे उनके पास भी काफी हैं। फिर कोई पैसे की परवाह नहीं करता ऐसे मौके पर।"

"तभी तो तुमसे कह रही हूँ वे तो आने को तैयार बैठी हैं। तुम उसके करीबी दोस्त थे। तुम्हारी बात वे समझ लेंगी। मैंने बार-बार उनसे न आने को कहा है पर वे सोचती हैं कि मैं औपचारिक हो रही हूँ। जैसे भी समझाऊँ उनको समझ भी नहीं आता।"

"हेलन वे लोग तुमसे चाहे न भी मिलना चाहें पर उन्हें पोते पोतियों से तो मिलना होगा।"

"से मैं उसे छुट्टियों में भारत भिजवा दूँगी। उसकी पहली बीवियाँ जो करना चाहें करें मैं अपने बेटे का तो वचन देती हूँ उनसे मिलने ज़रूर भेज दूँगी। पर तुम किसी तरह अभी उनका आना रोक लो।"

और शंकर ने फोन पर कहानियाँ गढ़ कर रोक लिया था।
"हेलन को रोज़ काम पर जाना होगा। उसकी तबियत भी ठीक नहीं है। बेचारी बहुत अकेली पड़ गई है।"
"बच्चों के भी स्कूल खुले हैं। उनकी ज़िन्दगी में खलल डालना सही नहीं होगा।"
"आप लोग यहाँ आकर करेंगी क्या? सब तो कामों में बिज़ी होंगे। फिर हवाई अड्डे से लाना ले जाना खिलाना-पिलाना ये सब बन्दोबस्त भी तो हेलन को करने होंगे। ऐसी हालत में कैसे कर पाएगी बेचारी। पहले से ही उसका अपना हाल बुरा है। आखिर उसके लिए तो भरी जवानी में ही पति चल बसा। पहले खुद को तो सँभाले औरों की ज़िम्मेवारी कैसे ले पाएगी।"
"दिवाकर तो चला गया जिसके साथ नाता था, उठना-बैठना था अब यहाँ किसके लिए आएँगी।"
"बच्चे आपसे मिलने आएँगे छुट्टियों में। तब साथ वक्त बिताने का भी मौका मिलेगा। कुछ धैर्य से काम लें। जो गया वह तो लौटेगा नहीं।"

मन में बहुत कष्ट हुआ था शंकर के। पर वह हेलन का नज़रिया भी समझता था। बेचारी कैसे सँभालेगी उन पक्की हिन्दोस्तानी सास ननद को। छूतछात, शाकाहारी, पता नहीं कितने तो झमेले होंगे। उसकी अपनी पत्नी जैकी भी तो कितनी नवर्स होती है उसको घर वालों से मिलकर। लाख ख़याल रखने पर भी उससे कोई न कोई गल्ती हो ही जाती है। कभी पल्ला ठीक नहीं लिया तो कभी पाय-हाथ नहीं लगाया। वह तो खुद इन चक्करों से परेशान हो अकेले ही जाकर माँ से मिल आता है। शुरू में जैकी भी गई थी उसके साथ। अब वह भी अपने कामों में उलझी रहती है और वे दोनो अपनी-अपनी छुट्टियाँ अपनी-अपनी मर्ज़ी से बिताते थे। साल दो साल में एक बार बच्चों के साथ पारिवारिक छुट्टी वहीं अमरीका या यूरोप वगैरह में मनाई जाती थी। पिछली बार वह बेटी को साथ ले गया था दादी से मिलवाने। पर बच्चे हर बार साथ चलना भी नहीं चाहते। उनके हम-उम्र साथी न हों तो उन्हें कहीं भी जाना भला नहीं लगता।

शंकर ने दुबारा ग़ौर किया उस दोस्त के अंतिम संस्कार पर एक भी हिन्दोस्तानी नहीं था और शंकर को बहुत अजीब सा लग रहा था। उसके कान जैसे किन्ही मंत्रोच्चार के लिए खुले बैठे थे, आँखें जैसे आग की लपटों के लिए आकुल। नासिकाओं में घी और सामग्री की चिकनी गंध कुलबुला रही थी।

पर गिरजाघर के हाल में इस पर पादरी की आवाज़ गूँज रही थी। शंकर उस सारे माहौल में बड़ा कुंठित-सा हो रहा था। उसके मन की बात कोई नहीं कह रहा था। वह उस सारे आयोजन में दृष्टा की तरह था। किसी से कुछ बाँट ही नहीं पा रहा था। कितना कुछ तो था उन दोनों के बीच जो अभी भी साँस ले रहा था। शंकर की आँखों के आगे वह नज़ारा घूम गया। जब वह इस शहर की ज़मीन पर पहली बार उतरा था हवाई जहाज़ से। दिवाकर ही उसे हवाई अड्डे पर लेने पहुँचा हुआ था। शुरू के कुछ दिन उसी के घर टिका था। वहीं उसकी अमरीकी गर्लफ्रेंड से भी मुलाक़ात हुई थी। उन दिनों शहर में कोई भी हिन्दोस्तानी रेस्ट्राँ नहीं होता था। भारतीय खाने की हुड़क उठती तो खुद ही जुगाड़ करना पड़ता। बस दोनों छड़े छड़ांग तरह-तरह के खानों के प्रयोग में जुट जाते। हिन्दोस्तानी खाना पकाने और अस्पताल के कर्मचारियों के साथ व्यवहार के तौर तरीकों से लेकर लड़कियों से डेटिंग तक हर चीज़ में वही शंकर का गुरु था। यों वह था तो शंकर से एक ही साल बड़ा पर हर बात में अगुआ। उन दिनों इस शहर में गिनेचुने ही हिन्दोस्तानी रहते थे। इसीलिए एक दूसरे का साहचर्य और भी ज़्यादा कीमती था। हर बात में एक दूसरे से सलाह, एक दूसरे की चाह। कालेज के दिनों की दोस्ती और भी गहरी जड़ें जमाती गई थी।

शहर की स्मृति उसे और भी दूर और भी पीछे ले जाती जा रही थी। दिल्ली के तालकटोरा ग्राउंड में यूथ फेस्टिवल चल रहा था। उन्नीस बरस के शंकर ने ज़िन्दगी में पहली बार एक लड़की को चूमा था और आसमान में उड़ता हुआ धरती पर उतर ही नहीं पा रहा था। तब दिवाकर ने कत्थे चूने वाला पान उसके मुँह में डाल कर कहा था, "ले खा ले नशा कुछ नीचे उतरेगा।"

दिवाकर ने ही उसे कविता और संगीत की ओर खींचा था। डाक्टरी की दुनियाँ में उलझे शंकर को कभी भी इनकी ख़बर नहीं रही। दिवाकर ने उसे गालिब पढ़वाया था टैगोर की कविता की खूबसूरती पहचाननी सिखाई थी। और रवींद्र संगीत की कोई भी कंपोज़ीशन वह दिवाकर को याद किए बिना सुन नहीं सकता था। उनके इतवारों की दुपहरियाँ और शामें ज़्यादातर हिन्दुस्तानी संगीत सुनने में ही निकलती थीं।

अब शंकर के भीतर ही सबकुछ कसमसा रहा था। पादरी ओल्ड टेस्टामेंट की पंक्तियाँ पढ़ रहा था, "राख से राख धूल से धूल जिस मिट्टी से निकले हैं उसी में मिल जाना है।"

सहसा कोई साँप-सा सरक गया शंकर की रीढ़ पर से। जैसे कोई मनोमन मिट्टी के नीचे उसे दफ्न किए दे रहा हो। अजीब-सी घुटन हुई उसे। हॉल में एकदम खामोशी थी। इस पर पादरी के शब्द कानों के परदों से टकरा रहे थे। कुछ गूँज रहा था शंकर के भीतर ब्रजने लगा था उसकी शिराओं में कितना कुछ संचित, अरसे से अर्जित, गुना-मथा हुआ, कहीं दबा छुपा हुआ...

पादरी आमेन करके डायस से नीचे उतरने ही वाला था कि शंकर सहसा खड़ा हो गया। और तेज़ लेकिन सधे कदमों से चला। लोग उसे देख रहे थे। हल्की-सी हलचल मची। लोग हैरान पर चुप थे।

बहुत संयत आवाज़ में शंकर ने कहा, "अपने दोस्त के लिए कुछ गीता के श्लोक और उसने संस्कृत और अंग्रेज़ी अनुवाद करते हुए एक के बाद एक श्लोक उच्चरित करने शुरू कर दिए। गीता के दूसरे अध्याय के श्लोक थे ये, "ये न कभी हत होता है न हत्यारा, न कभी जन्मता है न विनशता, जन्म मरन से परे देह नाश होने पर भी नष्ट नहीं होता, जिस तरह घिसे हुए वस्त्रों का त्याग कर नर नए धारण करता है उसी तरह घिसी देह का त्याग कर नई अपनाता है देही।

सब उसी ख़ामोशी से सुन रहे थे जिस खामोशी से पादरी को सुना था। शंकर का संस्कृत का उच्चारण भी बहुत कर्णमृदु था। पर फिर भी लोग उस तरह सहज नहीं थे जैसे अब तक थे। शायद उन स्वरों की ध्वनियाँ उन्हें अजनबी लग रही होंगी। पर फिर भी उन ध्वनियों में सत्व था, आग्रह था, सबने सुना और चुपचाप अपनी जगह टिके हुए सुनते रहे।

शंकर की निगाह अपनी पत्नी से मिली भौंचक्की-सी देख रही थी वह उसे। समझ नहीं पा रही थी शायद कि दाद दे या हैरान हो। उसकी हिम्मत सराहे या इस अटपटे व्यवहार पर डपट लगाए। शंकर को लगा कि वहाँ जैकी नहीं, हेलन ही खड़ी है। एक डरावनी-सी काली छाया उसके शरीर को दो टुकड़ों में काटती चली गई। सामने कुछ नहीं दिखता था अब। बस अंधेरे का गढ़ा काला गोल। पता नहीं कितनी-कितनी परछाइयों से लड़ रहा था उसका अवचेतन।

शंकर को लगा उसकी आवाज़ ख़ामोश हो रही है। उसके कान में फिर से पादरी की आवाज़ बजने लगी मिट्टी से बन कर मिट्टी में ही मिल जाना है, उसे लगा जैसे वह अपना ही अवसान देख रहा है, इसी तरह, ठीक इसी तरह उसकी पत्नी गिरजाघर की दीवारें, लंबी रंगीन खिड़कियाँ, बाइबल की पंक्तियाँ, अनजाने चेहरों का सैलाब, डरे हुए पस्त चेहरे, धूल और मिट्टी के अंतहीन अंबार।

और उसने फिर से ज़ोर लगाया, पल भर को वह कुछ और देख सुन नहीं पा रहा था, फिर सहसा जैसे पानी को काटता हुआ कोई जलपोत उसके अधरों से फिर से फूट निकला काट न सकते शस्त्र आत्मा को आग न कभी इसे जलाती विकृति रहित है अविचल आत्मा जन्म नित्य है तो मरन नित्य।

अचानक उसे लगा ताबूत में ख़ामोश लेटे दिवाकर का चेहरा उसकी ओर देख कर मुस्कुराया है। शंकर को रोंगटे खड़े हो गए। पल के भी छोटे से हिस्से में उसे महसूस हुआ कि दिवाकर कहीं नहीं गया, यहीं है, उसके आस पास। पर वह मुस्कान थी या खिल्ली इसका फैसला शंकर नहीं कर पाया। हॉल में अब लौटने वालों के पैरों और धीमी-धीमी बातों का शोर शुरू हो गया था। शंकर की आवाज़ शोर में डूब चुकी थी पर उसे लग रहा था कि अपनी आवाज़ वह अभी भी सुन पा रहा है।

(१६ अक्तूबर २००२ को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)

अज़ेलिया के रंगीन फूल

रास्ते भर मैं उन चटक रंगों के फूलों की झाड़ियाँ निहारती आई थी और सोचती रही थी कि ये कौन से फूल है दूर से देखने पर बोगनवेलिया की झाड़ियों का भ्रम दे देते हैं और पास आओ तो उनसे कहीं ज़्यादा खूबसूरत। उनसे कहीं ज़्यादा रंगों का खिलाव। आकार भी मोहक और खूब घने गुच्छे। जब कालेज के कैम्पस में पहुँचे तो वहाँ भी दूर तक फैली हरियाली के बीच-बीच गुलदस्तों की तरह सजे हुए। मुझसे रहा नहीं गया। ख़ास तौर से प्रिंसिपल की पत्नी के साथ उसके घर की ओर जाते हुए जब उनके घर के बाहर भी वैसी ही झाड़ी दिखी तो मैंने पूछ ही डाला, "फूलों की ऐसी झाड़ियाँ मैंने पहले कभी नहीं देखी न ही ऐसे चटकीले नीले, नारंगी, गुलाबी और सफेद रंग! कौन से फूल हैं ये?"

मिसेज़ मिलर ने बड़ी सहजता से कहा, "अजेलिया। बसंत में खूब फूटते हैं और बिना ख़ास मेहनत के, इसलिए आपको हर कहीं दिखाई दे रहे हैं।"
"दूर से देखने पर मैं इन्हें बोगिनवेलिया ही समझती रही।"
"हाँ बहुतों को हो जाता है यह भ्रम, ख़ासकर हिन्दुस्तानियों को।" वे मुस्कराई।
तो इस इलाके का बड़ा आम फूल है यह। लेकिन फिर भी उनके ज्ञान से प्रभावित थी मैं। अपने माहौल के साथ कितनी रची-बसी है। शायद वे खुद भी तो इस अजेलिया फूल की तरह है, इस भूमि पर, इस माहौल पर पूरे अधिकार से जमी हुई।

वे मुझे पिछवाड़े वाले दरवाज़े से घर के अंदर ले चली। मैं उनके पीछे-पीछे चलती हुई भी उनकी फुलवारी को ही निहारती जा रही थी और सोच रही थी ऐसे अभिजात और अमीर अमरीकियों के कालेज के प्रिंसिपल का घर भी कुछ ख़ास तो होगा ही। और यह महिला भी ख़ास होगी जिससे प्रिंसिपल ने शादी की है।

घर सच में ही ख़ास था। उँची-उँची छतोंवाला विक्टोरियन शैली का जिसे बड़े ही करीने से सजाया गया था। उस सारी सजावट पर अंग्रेज़ियत की जगह ऐशियाई छाप थी। दरअसल एशिया के हर देश की कलाकृतियों के खूबसूरत नमूने वहाँ मौजूद थे, तिब्बत के थका, इंडोनीशिया की कठपुतलियाँ, जापान का जैन बुद्ध, भारत की चोल मूर्तियाँ और श्रीलंका के मुखौटे। फिर भी चीज़ों का जमघट नहीं लग रहा था। हर कलाकृति का अपना कोना था, अपनी जगह थी और उस विशालाकार भवन में जगह की कमी तो थी नहीं। इसलिए सजावट भी सिर्फ़ बैठक की धरोहर नहीं थी। खाने और पढ़ने के कमरों की सजावट भी ख़ास थी। सोने के कमरे चूँकि ऊपरी मंज़िल पर थे इसलिए वहाँ तक हम नहीं गए, बाकी का घर बैठने से पहले ही मिसेज मिलर ने दिखा दिया था। दरअसल बाहर से ही फूलों की जो पूछताछ करनी मैंने शुरू कर दी थी, उससे उन्हें लगा कि मेरी रुचि घर की चीज़ों में होगी ही इसीलिए घर दिखाते हुए वे बड़े शौक से मुझे बताती रही कि किन-किन ऐशियाई देशों में वे अपने पति के साथ गई और वहाँ से ये ख़रीदारी की। यों उस बताने में कोई विशेष उत्साह नहीं था, एक टूरिस्ट गाईड के अभ्यस्त वाक्यों की दोषहीन प्रस्तुति थी। मेरा ध्यान फिर उनके पहनावे और चेहरे-मोहरे पर चला गया और मैं उस घर के माहौल के साथ उनका तालमेल बिठाने लगी। यों उनका बादामी रंग का रेशमी कुरता-चूड़ीदार तो इस

माहौल के साथ मेल खा जाता था पर उस पठानी चेहरे पर एक पंजाबी किसान का सा अक्खड़पन था जो करीने से कटे बाल होने पर भी किसी तरह की अभिजातता को चीर कर पार आ जाता था। उस चेहरे को मैं सुंदर भी नहीं कह सकती थी। इसलिए मैं हैरान होती रही कि क्या था इस महिला में जो इस कॉलेज के अभिजात परिवार के प्रिसिंपल को भाया होगा जो उनके विवाह के गठबन्धन की नींव बना। क्योंकि अब तक मैंने उन बंगाली औरतों को ही अभिजात परिवारों के अमरीकियों से शादीशुदा देखा था और वे महिलायें अपने आप में भी बड़ी अभिजात, इंग्लैंड की रानी की शैली की अंग्रेज़ी बोलनेवाली और बला की रूपवती थी। मिसेज मिलर तो अंग्रेज़ी भी पंजाबी लहजे में बोल रही थी फ़िर क्या था? क्या किसी तरह का यौनाकर्षण! शायद उन बिल्ली आँखों और गोरे रंग की वजह से वे उनको अमरीकी ही लगी हो और बाकी सब कुछ उनका नयापन! या उनके उस किसान महिला के स्वस्थ, गुलाब की तरह दमकते रंग की ताज़गी और लंबा उँचा कद अपने आप में हिन्दुस्तानी खूबसूरती की एक नवीनता थी! यों अगर वह हिन्दुस्तान में होती तो मैं पहली नज़र में उसे किसी पुलिस इंस्पेक्टर या सूबेदार की पत्नी समझती।

"चाय लेंगी?" वे पूछ रही थीं।
"तकलीफ़ नहीं होगी बनाने में?" मैंने औपचारिकतावश ही कहा था वर्ना चाय का मूड तो खूब था।
"तकलीफ़ किस बात की!" और वे किचन की तरफ़ बढ़ गई। मैं उनकी अनुपस्थिति में बैठक की चीज़ों को और भी ग़ौर से देखने लगी। शायद ये सारी कलाकृतियाँ खुद प्रोफेसर मिलर ने ही ख़रीदी होगी! क्या उनकी सजावट का सलीका भी उन्हीं की निगाह ने नहीं चुना होगा! लेकिन मिसेज़ मिलर भी जितने आराम के साथ इन सब से जुड़ी हुई है ऐसा तो नहीं लगता कि घर उनका बनाया-सजाया नहीं है। फिर वे गृहस्थी के इलावा कोई और काम भी करती दीखती नहीं।
पलों में ही ट्रे में चाय सजाकर बैठक में दाखिल हुई। सुनहरी लकीरों वाला वह बड़ी महंगी और बेहतरीन किस्म की इंग्लिश चाईना का टी सेट दीख रहा था। केतली पर पंजाबी फुलकारी की कढ़ाई वाली टिकोज़ी चढ़ी थी। काफी मेज़ पर ट्रे रखकर वे बड़ी नफासत से सुनहरी लकीर वाले उन प्यालों में चाय उड़ेलने लगी। एक तश्तरी में बिस्कुट भी थे।
"भारत जाती रहती हैं आप?" यह सवाल मैंने उठाया था।
"इतने साल तो हम लोग भारत में ही रहे। निक फोर्ड फाउन्डेशन के हैड थे न वहाँ। अभी पाँच साल ही तो हुए हैं यहाँ आए। कोई ख़ास नहीं जाती। यों भी..."

उनका "यों भी" मेरी आँखों में शायद सवाल बना टँगा रहा था इसीलिए कहना फिर से जारी कर दिया, "वहाँ जाकर मन खराब हो जाता है, सब लोग बस रोते-धोते ही हैं! यहाँ अच्छा ही है कि लोग सिर्फ़ उपरी बात ही करते हैं, अपने कष्टों को लेकर चुप ही रहते हैं, एक हफ्ते के लिए गई थी, सिर्फ़ रोना ही सुनती रही। जी उखड़ गया।" मैंनै ग़ौर किया कि मेरे लगातार हिन्दी में बात करने के बावजूद वे अंग्रेज़ी में जवाब दिये चले जा रही थी।

"वहाँ या तो कोई न कोई मरता रहता है या बीमारी या आर्थिक चिन्तायें लगी रहती हैं। मैं तो भारत से कोई नाता नहीं रखना चाहती। यहीं की होकर रहना चाहती हूँ।"
"आपका परिवार कहा है?"
"वैसे तो नाभा से है, पर अब माँ बाप नहीं हैं, बस भाई बहन हैं।"
"कितने भाई बहन हैं?"
"आठ - तीन बहनें, पाँच भाई।"
"क्या करते हैं?"

"सब अपनी-अपनी जगह सेटेल्ड हैं, वहीं पंजाब में ही। एक पुलिस इन्स्पेक्टर था, टैरेरिस्टों ने हत्या कर दी, उसके बीवी बच्चे दूसरे भाई के साथ रहते हैं।"
मेरी आगे पूछने की हिम्मत नहीं हुई। बात का रूख बदलने के लिए मैंने कहा, "आपकी प्रोफेसर मिलर से मुलाक़ात कैसे हुई?"
"एक कैम्प में, ये अपनी ऐन्थ्रोपालौजी के शोध के सिलसिले में वहाँ आए हुए थे। मैं बच्चों को पढ़ाती थी।"
"आपने पढ़ाई कहाँ की?"
"वहीं, गवर्नमेन्ट कालेज से बी.ए. की थी।"

अब मुलाक़ात का और खुलासा लेने की मेरी हिम्मत नहीं हो रही थी न ही वे खुद इस विषय में पहल कर रही थी। ऐसा लग रहा था कि उनको इस विषय में विस्तार से जाने में रुचि नहीं इसी से उनके जवाब नपे-तुले ही थे। यों भी जिस तरह की औपचारिक मुलाक़ात थी उसमें ऐसे सवाल पूछने ठीक भी नहीं थे। आखिर मुझे सिर्फ़ साड़ी में देख कर ही तो यह चाय का निमंत्रण दे दिया गया था। वर्ना दूसरे छात्रों के माँ-बाप भी तो थे। और किसी को तो नहीं बुलाया। ख़ासकर आज तो नहीं बुलाया जबकि सभी सीनियर्स के माँ-बाप इस कालेज के उत्सव पर पहुँचे हुए थे। शायद यह मेरी दिल्ली के खज़ाना से ख़रीदी गई साड़ी के प्रिंट का कमाल था। यों साड़ी की खूबसूरती को लेकर तो उन्होंने कोई टिप्पणी नहीं की थी। न ही उसकी वजह से उनकी आँखों में मेरे लिए कोई ख़ास जगह बन गई थी। हाँ, साड़ी ने उनके मन में कौतूहल ज़रूर जगया था। तभी तो उनकी निगाह मुझ पर टिककर पूछ बैठी थी, "क्या आप हमारे किसी छात्र की माँ है?" और मुझे भी सुनहरी मौका मिल गया था उनके प्रति अपनी सारी जिज्ञासायें शांत करने का। मैंने तो पहले से ही उनके बारे में इस तरह से काफ़ी सुन रखा था कि इस अभिजात्य कालेज के प्रिंसिपल की पत्नी भारतीय है और पंजाबी हैं।

सहसा हम दोनों के बीच चुप्पी का एक सफ़ेद बादल आकर बैठ गया। मुझे घबराहट होने लगी, ऐसी स्थिति मुझे हमेशा परेशान करती है कि किसी से बात करने के लिए ही उसे मिला जाए और सहसा लगे कि कहने को कुछ है ही नहीं। पर जल्द ही मिसेज मिलर ने उबार दिया –
"चाय में चीनी कितनी लेंगी आप?"
"चीनी नहीं लेती, सिर्फ़ थोड़ा सा दूध!"
"मैं तो तीन चम्मच चीनी लेती हूँ, बिना ढेर सारे दूध और चीनी के मुझे तो चाय अच्छी ही नहीं लगती - सब लोग यहाँ घूरने लगते हैं इतनी चीनी डालते देख, बट आई डोंट केयर!"
"सुबह के कार्यक्रम में गई थीं न आप?"
उन्होंने छोटी-सी 'हूँ' कर दी।
"मुझे आप दिखी नहीं थीं। क्या आप स्टेज पर थी प्रिसिंपल के साथ?"
"अरे नहीं, मैं उस तरह का प्रिसिंपल की पत्नी का रोल नहीं निभाती। मुझे अपनी आज़ादी पसन्द हैं।"
"तो आप कालेज के उत्सवों में कतई हिस्सा नहीं लेती?"
"जितना लेना पड़ता है ले लेती हूँ, पर किसी तरह अपने को दूसरों पर लादना मुझे बिल्कुल पसंद नहीं, अब देखिए मुझे ऐन्टरटेन तो करना ही पड़ता है सो आए दिन कालेज बोर्ड के सदस्य या दूसरे जो भी कालेज के नज़रिये से महत्वपूर्ण होते हैं उनके लिए डिनर वगैरह करती ही हूँ! पर उससे ज़्यादा इन्वाल्व होना मुझे सही नहीं लगता। मैं तो निक के साथ ज़्यादा कहीं आती-जाती भी नहीं, बस जितना ज़रूरी हो..."
"ज़रूरी-ग़ैरज़रूरी का फ़ैसला कौन करता है।"

"काफी दिलचस्प सवाल है आपका, शायद हालात सिखा देते हैं, एक सहजज्ञान दे देते हैं इंसान को इस तरह के फ़ैसलों के लिए! पता नहीं कैसे करती हूँ यह फ़ैसला, शायद जब निक की कह देता है कि जाना चाहिए, आप बताईये आप को भी तो ज़िंदगी में क्या ज़रूरी या ग़ैरज़रूरी है इसका फैसला कदम-कदम पर करना पड़ता होगा, कैसे करती हैं?"
मैं सकपका जाती हूँ। सच है मुझे ही सवाल पूछने का हक क्यों हो, वे भी शायद मेरे प्रति वैसा ही कौतूहल रखती है जैसा कि मैं उनके लिए। शायद जानना चाहती हो कि भारत के कौन से हिस्से से मैं जुड़ी हूँ, कि मेरे पति डाक्टर है या बिजनेसमैन, कि मैं खुद भी किसी प्रोफेशन में हूँ या कि गृहिणी हूँ! पर मैं उनके सवाल पूछते ही बीरबहूटी की तरह अपने चारों पैर समेट कर बंद हो जाती हूँ। मुझे अपनी पहचान छुपाकर अनजान लोगों से बात करने में यों भी एक ख़ास मज़ा आता है इसलिए मैंने उन्हें यह तक नहीं बताया कि मैं भी उन्हीं के जैसे एक कालेज में प्राध्यापिका हूँ।

वे इंतज़ार करने लगती है मेरी ओर से कुछ कहे जाने का। मुझे एक और सवाल सूझ जाता है जो कि मुझे काफी सही ही लगता है पूछना, "क्या हिन्दुस्तानी मित्र है आपके?"
"वही हिन्दुस्तान में ढेर लोगों को जानते थे, वही सब यहाँ आते रहते हैं, कोई नए मित्र तो यहाँ आकर नहीं बनाए, पर हमारे कुछेक दोस्तों के बच्चे यहीं कालेजों में पढ़ते हैं, इसी से वे आते-जाते रहते हैं।"
"तब तो ख़ासे अमीर लोग होंगे, यहाँ आना जाना..."
"बिल्कुल, स्टिकिंग रिच, पर हिन्दुस्तानियों की एक बात समझ नहीं आती, इतना पैसा होते हुए भी अपने बच्चों की पढ़ाई के लिए आर्थिक सहायता माँगते रहते हैं, मेरी अपनी ही सहेली हैं बम्बई से लिखती है कि कालेज से पैसा दिलवा दो, लड़के की फीस के पैसे नहीं है पर लड़का यों बड़ा ब्राईट है, दाखिला भी मिला है उसे यहाँ, मुझे तो शर्म आती है सच में, मैं जानती हूँ कि करोड़ों से खेलने वाले ये लोग हैं, अपने कपड़ों और घड़ियों पर लाखो उड़ेल देंगे पर बच्चे की फीस के लिए भीख!"
"पर यहाँ फीसें भी तो इतनी ज़्यादा है और हिन्दुस्तानी रुपए डालर के तौल में इतने कम..."
"सो तो मैं जानती हूँ, पर करोड़ों से खेलने वाले..."
"कुछ भी हो इन देशों के सामने तो हम गरीब ही है।"
यों मेरी अपनी बिटिया ने यहाँ पढ़ने के लिए कोई आर्थिक सहायता नहीं ली थी फिर भी मुझे यह पैरवी करनी ही सही लगी।
"जानती हूँ मैं, पश्चिमी देशों पर भी यह अपराध बोझ है कि तीसरी दुनिया के बूते पर ही वे अमीर भी हुए है इसलिए उनकी मदद करना इन देशों का नैतिक दायित्व है, लेकिन कब तक भरते रहेंगे ये हर्जाना! और कब तक हम इनके आगे हाथ पसारे बैठे रहेंगे। मुझे तो हिन्दुस्तानियों के रवैये से बहुत शर्म आती है, आखिर यहाँ भी तो पैसा कोई आसमान से तो गिरता नहीं... सबकी मेहनत से ही होता है, यहाँ तो अनलिखा कानून है कि जिन छात्रों को आर्थिक सहायता दी जाती है नौकरी लगने के बाद वे अपने कालेज की आर्थिक सहायता करते हैं, आज हमारे कालेज को जो सबसे बड़ी ग्रांट मिल रही है वो यहीं के एक पुराने छात्र की कंपनी से हैं, हिंन्दुस्तानी छात्र तो इस तरह की कोई ज़िम्मेदारी नहीं समझते सिर्फ़ लेना ही जानते हैं।"

बात सही होते हुए भी मुझे उनकी इस बात से बड़ी तकलीफ़ हो रही थी, शायद मैं विदेश में बैठी किसी हिन्दुस्तानी के मुँह से हिन्दुस्तानियों की बुराई सुनने की आदी नहीं थीं, हिन्दुस्तानियों से मिलकर ज़्यादातर घर की खट्टी-मीठी यादों को ही दुहराया जाता या फिर राजनीति की बात छिड़ जाती। पर इस तरह के औपचारिक माहौल में हिन्दुस्तानी होने मात्र से आ जाने वाली अनौपचारिकता बड़ी अस्वाभाविक-सी लग रही थी और मुझे अपने आप में अजीब तरह का नैतिक बोझ महसूस होने लगा। ख़ास तौर से इसलिए भी मैं कुछ अटपटा महसूस करने लगी क्योंकि उनकी बातों में कुछ वैसी ही गंध थी जैसी कि ऊँचे तबके के अमरीकियों की बातों में होती हैं कुछ पेट्रनाइज करने

की, कुछ यह मान कर चलने की कि अगर मैं सफल हो सका हूँ तो दूसरे क्यों नहीं हो सकते और अगर नहीं होते तो उन्हीं में कमी हैं और इसलिए वही इसका फल भी भोगे! जबकि मेरी अपनी परवरिश चाहे भरे-पूरे घर में हुई थी फिर भी समानता और समाजवाद के हक में बोलना मैंने अपने कालेज के माहौल से जज़्ब किया हुआ था।

"अब आप ही बताइए कि ऐशियाई देशों को सहायता देकर अगर अमीर बन जाने के बाद भी ये लोग अपने कालेजों की सहायता न करे तो फिर इन कालेजों के आर्थिक स्त्रोत तो एकदम सूख जाएँगे और अगर एशियाइयों को ही मदद मिलती रही और बदले में उन्होंने कुछ भी दिया नहीं तो कालेज बंद होने की नौबत आ जाएगी। आजकल कालेज - यूनिवर्सीटियों में जो इतना आर्थिक संकट आ पड़ा है उसकी एक वजह तो यही है कि लोगों में वैसी देने की प्रवृत्ति नहीं रही, और लेने वालों की गिनती में इज़ाफा होता जा रहा है।"

मुझे समझ नहीं आ रहा था कि मुझे यह सब क्यों सुनाया जा रहा है। कौनसी भड़ास है जिन्हें मुझ पर उगला जा रहा है। अमरीका की पैरवी करके या हिन्दुस्तानियों की बुराई करके यह मुझसे क्या पाने की अपेक्षा कर रही हैं, सिर्फ़ हमदर्दी या एक सक्रिय अभियान! या कुछ और परेशान कर रहा है इन्हें! मेरी सहज बुद्धि चुपके से बोली, "हीनता ग्रंथि।" पर किसी ने ज़ोर देकर थप्पड़ जमाया उसे..." ऐसे भी कहीं बिना पड़ताल किए फैसले दिए जाते हैं, यह सब सरलतावादी दृष्टिकोण हैं, नहीं चलेगा।" यों भी फ्रायड की भाषा अब फैशनेबल नहीं रही...ज़रूरत से ज़्यादा घिसायी-पिटायी जा चुकी हैं।

मैंने धीरे से पूछा, "आपके ख़याल से हिन्दुस्तानी यहाँ के वैभव को पराया या लूट का धन मान उसका भोग करते या उसे उजाड़ते हैं, अपनों जैसा नहीं समझते?" मेरा सवाल कुछ ज़्यादा तीखा रहा होगा, वे अचकचायी।

"परायी संपत्ति जैसा बर्ताव तो ज़रूर करते हैं, तभी लूट-मारकर, चाहे वाजिब ढंग से ही, अपना घर भरने की, अपने साथ हिन्दुस्तान भरसक ले जाने की कमोबेश प्रवृत्ति सभी में होती है पर जहाँ तक अपना समझने का सवाल है..."

वे कुछ पल सोचने की मुद्रा में रही। दायाँ हाथ कुछ उपर को उठा फिर गोदी में वापस आ गिरा। वे जैसे शब्द ढूँढती रही, "अपना बनाना या अपना हो पाना, शायद वह सब मुमकिन ही नहीं..."
मैं हैरान-सी उन्हें देखती रही।
"चाहे जो भी हो जाए, अपने तो वे हो ही नहीं सकते।"
"ऐसा क्यों कह रहीं है आप?"
"अब मुझी को देख लीजिए, बीस सालों से ब्याही हूँ निक से, अभी भी किसी नए आदमी से मिलती हूँ तो पहला सवाल यही पूछता है, "किस देश से हैं आप?" एक बात कहूँ आपसे, मैं सोचती थी कि यहीं की हूँ और दरअसल यही की होकर रहना चाहती हूँ, लेकिन एक विदेशी बनकर ही अमरीकी बन कर नहीं।"
"ऐसा क्यों?"
"सीधी सी बात है, आप के अमरीकी बनना चाहने से क्या होता है! असल बात तो तब है कि ये लोग आपको अमरीकी माने! ये लोग तो आपके रंग और शक्लसूरत को देख कर पूछेंगे ही कि कहाँ से हैं आप? उनके लिए यह सवाल बड़ा सहज है लेकिन सवाल उठते ही आप दूसरे की कैटगरी में आ जाती है, यहाँ की नहीं रहती।"

मैं घूरे जा रही थी उन्हें! यह बीस साल की पत्नी कह रही हैं! वह पत्नी जो कि उन्हीं की भाषा बोलती है, उन्ही के लिए लड़ती है, उन्हीं की पैरवी करती है, उन्हीं के सिद्धान्त बघारती है, फिर भी उनके समाज का हिस्सा नहीं!

बहुत अजीब-सा लगा। एक पत्नी एक तरह से पुरुष के जीवन में सबकुछ होती है। अगर पुरुष की जगह समाज में होती है तो पत्नी की जगह अपने आप ही बन जाती है। फिर निक तो खुद भी भारत का बड़ा हिमायती, बड़े खुले दिल वाला इन्सान दीखता है, अपने भाषण में भी उसने इसी बात पर ज़ोर दिया था कि उसके कालेज में ऐशियाई विषयों को पढ़ाने पर विशेष ध्यान दिया जाएगा, कि वह बहुत ज़रूरी समझता है कि अमरीकी लोग बाहर की दुनिया को जाने-समझे। ऐसे व्यक्ति की पत्नी होकर भी यह खुद को बाहर का महसूस करती है। मैंने पूछ ही लिया, "लेकिन आपके पति तो..."

"नहीं पति की बात नहीं वे तो यों भी निराले हैं वैसा उदार इन्सान तो मैंने कभी नहीं देखा होगा लेकिन उन्होंने खुद भी तो अपने समाज की अवहेलना कर ही मुझसे शादी की थी, निक के माँ बाप ने तो कभी भी इस शादी को अपना आशीर्वाद नहीं दिया, जब समाज की रजामंदी ही नहीं थीं तो किसी को स्वीकारने को बाध्य भी कैसे किया जा सकता है, यों वे मिलते हैं, फिर बच्चों से भी बड़ा प्यार करते हैं..." उनकी आँखें कुछ खोजती हुई बैठक की शीशे की दीवार के पार से झाकती अजेलिया फूलों की नारंगी झाड़ी पर टिक गई, "जानती हैं मुझे कैसा लगता है ख़ासकर जब भी मैं निक के साथ इन अभिजात अमरीकियों के घर जाती हूँ तो नहीं, कहता कोई कुछ नहीं पर जैसे उन आँखों में एक भाव रहता है जैसे कि मैं निक की कोई ग़लती हूँ, ऐसी ग़लती जिसे वे शायद माफ़ कर देंगे, आखिर पत्नी के चुनाव की गलती तो बहुत लोगों से हो जाती है, पर उस पत्नी के साथ निभाना उनकी मजबूरी नहीं। वे निक को स्वीकार तो करते हैं क्योंकि वह उन्हीं के बीच का हैं लेकिन मुझे पता नहीं कैसे वे महसूस करा ही देते हैं कि मैं उनके बीच की नहीं कि निक ने अगर गलती की हैं तो या तो उसका सुधार कर ले या फिर खुद ही भोगे, उनसे तो ऐसी अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि वे मुझे सिर पर चढाए सिर्फ़ इसलिए कि उनके समाज का एक सदस्य पागलपन कर बैठा है!"

चाय का प्याला मुझे थमाते हुए बोली, "यों निक भी उनके जैसा तो नहीं, कहीं विद्रोही था, अपने समाज से बड़ा अलग था। तभी तो मेरे साथ निभी। पर अब कुछ अजीब सा हो रहा है, ऐसा लगता है मानो वह अब फिर से अपनी पहचानी दुनिया के करीब जाना चाहता है, जबकि मैं इस के लिए तैयार नहीं हो सकती फिर मेरे तैयार होने की तो बात ही नहीं, मेरा होना मात्र ही मुझे उस दुनिया से दूर छिटक देता है, बाकी सब तो बस कहने की बातें हैं..."

"निक इस बारे में क्या महसूस करते हैं?"

"निक तो डंके की चोट पर सब से मनवाने को तैयार रहते हैं, विद्रोह तो हमेशा से उनका स्वभाव रहा है पर कहा न, एक पूरे समाज को बदलना किसी एक के बस की बात नहीं होती फ़िर..."

वे रुक गई। मेरी आँखें उन पर जमी रही। शायद हार मान आँखें नीचे झुकाये ही उन्होंने फिर से कहना शुरू किया, "शायद मैं खुद अपनी पहचानी दुनिया के करीब जाना चाहती हूँ, एक अरसा घूमघाम के अब अपने घर लौट आने का मन होता है।"

मैं दुविधा में पड़ गई। अभी कुछ देर पहले वे यही की होकर रहने की बात कर रही थी, अब घर लौटने की। पर मेरे कुछ कहने से पहले ही वे बोल उठी, "पर घर से मेरा मतलब हिन्दुस्तान से नहीं है, शायद वहाँ भी रहना अब तकलीफदेह ही होगा, घर मेरे लिए एक आरामदेह माहौल का ही नाम है, जिसे यों कहीं भी खोजा जा सकता है, और कहीं भी खोया..." और उन्होंने एकदम चुप्पी साध ली मानो इस विषय पर और बात नहीं करना चाहती हो और अपनी नज़र अजेलिया के नीले झाड़ पर गाड़ दी। मैं कुछ देर इधर उधर ताकती रही।

मैंने चाय की चुस्की ली तो बड़ी पहचानी-सी खुशबू नथुनों की ओर दौड़ी।

'बड़ी बढ़िया चाय है, क्या इलायची डाली है इसमें? खूब महक आ रही है।"

"सच में! पसंद आई आपको! मुझसे तो यहाँ की चाय पी ही नहीं जाती, जब तक अपने मन का स्वाद न हो चाय का मज़ा भी क्या, मैं तो अभी भी वही देसी ढंग से चाय बनाती हूँ।"

मैं सुनहरी लकीर वाले उस बढ़िया अमरीकी प्याले से कड़क हिन्दुस्तानी चाय का स्वाद लेते हुए लान में चहकते-महकते अजेलिया फूलों को देख सोचने लगी कि इनसे पूछूँ कि क्या इन्हें हर कहीं उगाया जा सकता है!

(९ अगस्त २००३ को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)

काला लिबास

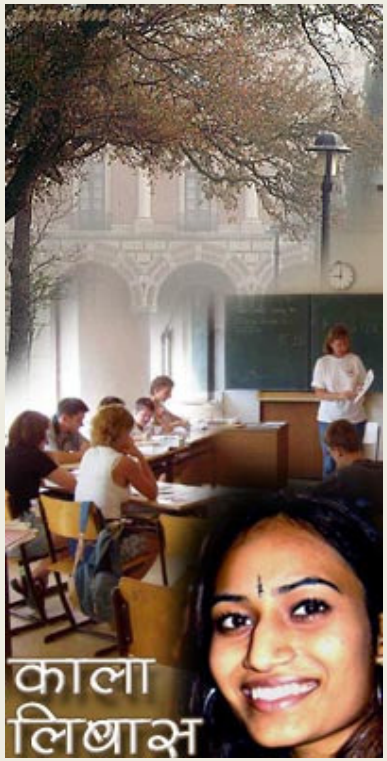

उसकी खनखनाती हँसी कमरे भर की किताबों और तस्वीरों पर चिपकी हुई थी। यों उस कमरे में हँसी कोई आम बात नहीं थी। सभी ओढ़े हुए, डरे हुए या कुछ और हुए होते थे। ख़ास तौर से नए-नवेले छात्र। पर वह यहाँ आते ही एकदम सहज हो उठती थी। वह मुझसे कहती भी थी, "आपका दफ़्तर इस पूरी यूनिवर्सिटी से अलग है। हिंदी की किताबें, तस्वीरें ब़ड़ा अपना-अपना-सा लगता है यहाँ आकर!"

अब कुछ-कुछ वैसा ही चेहरा उम्र के बीस-पच्चीस अधिक साल लपेटे मेरे सामने बैठा था। पर अनन्या से कितना फ़र्क। जिस तरह बाँह के दोनों जोड़ों में मुठ्ठियाँ घुसाए तनी हुई बैठी थी ये महिला, अनन्या तो कहीं दूर से भी इससे जुड़ी नहीं दिखती! वह तो या खड़ी रहती थी या आराम से कुर्सी पर पसर जाती। पर मैं जानती हूँ कि सामने बैठी महिला अनन्या की माँ है और इसीलिए वह मुझसे मिलने आई है।

माँ जब मजबूर हो जाती है तो किसी के आगे भी झुकने या लड़ने को तैयार हो जाती है वर्ना जब तक मजबूरी का अहसास नहीं हो जाता तब तक वह चाहे अपने वात्सल्य के पात्र पर ही चोट करती रहती है। चाहे वह चोट घंटे से टंकार उगारने के लिए ही हो। लेकिन वह टंकार तो दूसरों के सुनने भर के लिए ही होती है। घंटे पर गुज़री तो घंटा ही जाने!

सामने वाली महिला का चेहरा बड़ा क्षुब्ध-सा है। चेहरे के छोटे गोल नक्श शायद गुस्से की वजह से कुछ सूजे हुए से दीख पड़ते हैं। यों मुझे उससे हमदर्दी है लेकिन उसका जन्मजात रूखापन मुझे भीतर कहीं सुखाए दे रहा है। अनन्या ने कभी मुझसे कहा भी था, "मेरी माँ के लिए सबसे ज़्यादा अहम उसका कैरियर है ह़म सब उसके बाद आते हैं!" अब इस तरह अपने सामने उसे कसा हुआ बैठा देख मैं कोई सांत्वना के शब्द भी नहीं उड़ेल पा रही। वैसे इसको मुझसे अनन्या की सिफ़ारिश करने की कोई ज़रूरत नहीं है। मैंने पहले ही डीन से कह दिया है कि अनन्या एक मेधावी और मेहनती छात्रा है और मुझे कभी उससे किसी तरह की भी शिकायत नहीं हुई। पर मेरे दफ़्तर आने से पहले इस महिला ने मुझे फ़ोन कर कहा था, "मैं डाक्टर मनोचा बोल रहीं हूँ, अनन्या की मदर। मैं आपसे मिलना चाहती हूँ।"

मुझे उसका फ़ोन पाकर हैरानी नहीं हुई थी, मिलने की बात से भी हैरानी नहीं हुई थी। फिर भी उसकी आवाज़ का अंदाज़ कुछ ऐसा था, रौबीला-सा कि मुझसे कुछ कहा नहीं गया। उसकी आवाज़ फिर सुनाई पड़ी, "मैं अनन्या के बारे में जितना ज़्यादा जान सकूँ, जानना चाहती हूँ। मुझे आपकी मदद की ज़रूरत है, वह आपके बारे में बहुत बात किया करती थी।

जिस तरह पत्नी पति की हरकतों को जाननेवाला आख़िरी व्यक्ति होती है उसी तरह जवान बच्चों की माँ बच्चे की हरकत को जाननेवाला शायद अंतिम व्यक्ति होती है। ख़ास तौर से जब बच्चे पंख लगा कर कालेज की दुनिया में उड़ आए हो तो! अब खेत चुगे जाने के बाद क्या ये फिर से खेती करना चाहती है।

हमदर्दी की जगह में एक कड़वा-सा वाक्य उछाल देती हूँ, "वह घर से शायद कुछ असंतुष्ट थी। आप शायद उसे डाक्टरी पढ़वाना चाहती थी आप और आपके पति दोनों डॉक्टर हैं न।"

वह कुछ चिढ़ती हुई-सी बोली, "जी मैंने तो कभी उस पर कोई दबाव नहीं डाला, बचपन से ही जो चाहा करने दिया। बचपन में भी यह पियानो सीखती थी। यह तो जब से हिंदुस्तान से लौटी है बस तभी से इसे कुछ हो गया है।"
उन्होंने आख़िरी वाक्य कहकर एक लंबी साँस भरी और हिंदुस्तान का नाम लेकर फिर कुछ बुडबुडाई।
मुझे कुछ हँसी-सी आई। बंगाल का जादू तो सुना था मैंने पर यह हिंदुस्तान का जादू क्या था?

यों हिंदुस्तान से लौटकर मुझे भी कुछ हो जाता है, जैसे कि घंटों सुस्त पड़े रहना। काम में मन न लगना। आवाज़ों की याद, दोस्तों और सगे-संबंधियों की याद, मौसम की याद, स्वादों और गंधों की याद, बस एक मीठी-सी खुमारी छाए रहना। पर वह सब कुछ दिनों बाद छट जाता है, ज़िंदगी देर-सबेर ढर्रे पर आ ही जाती है। ऐसा तो नहीं होता कि कुछ आमूल-चूल परिवर्तन आ जाए। यों परिवर्तन होगा भी क्या? वही की मिट्टी से ही तो गढ़ी हुई हूँ मैं। बस वहाँ न हो पाने की कसक भर ही कभी-कभी उठ जाती है। लेकिन अनन्या तो यहीं की पैदाइश, यहीं पर पली-बढ़ी है। उसके भाई-बहन, माँ-बाप और दोस्त सब यहीं है। फिर उसे किस बात की कसक। हिंदुस्तान का जादू उसके सर चढ़ क्यों बोल रहा था।

हिंदुस्तान के प्रति कौतूहल तो ज़रूर उसमें पहले से रहा होगा क्योंकि कालेज के पहले साल में ही उसने हिंदी पढ़नी शुरू कर दी थी और मेहनत करके क्लास में अव्वल रहती थी। उसने बतलाया था कि इंडियाना में हाईस्कूल की पढ़ाई के दौरान भी अपने माँ-बाप के किन्ही मित्र की पत्नी से उसने कुछ हिंदी सीखी थी। इसीलिए शायद मेरी क्लास में वह इतनी आसानी से आगे बढ़ती जा रही थी। दूसरे साल के शुरू में ही उसने ख़्वाहिश ज़ाहिर की थी कि वह यूनिवर्सिटी के "ज्यूनियर इयर अब्राड" प्रोग्राम के तहत साल भर के लिए पढ़ाई करने भारत जाना चाहती है। उसकी काबिलियत देख मैंने उसके लिए सिफ़ारिशी पत्र भी लिख दिया था। हर साल ही मैं कम से कम दो-चार विद्यार्थियों के लिए सिफ़ारिश के ख़त लिखती ही हूँ और अक्सर उनमें से एकाध भारतीय मूल का भी होता ही है। अपनी जड़ों की पहचान की जिज्ञासा भी कोई नई बात तो नहीं। हाँ वह सिर्फ़ संवेदनशील युवक-युवतियों में ही होती है। और अनन्या की संवेदनशीलता तो उसके चेहरे से ही झलक जाती थी, बहुत कोमल, खूब घनी साँवली त्वचा और गहरी-गंभीर बेहद इंटेंस आँखें। देखने में बहुत सुंदर नहीं थी पर उन आँखों की शिद्दत और त्वचा के साँवलेपन में एक तरह की लुनाई उसे बहुत आकर्षक बना देती थी। बहुत मतलब के सवाल पूछती थी और फालतू बात एकदम नहीं। फिर भी भारतीय मूल के अन्य अमेरीकी विद्यार्थियों से कुछ अलग नहीं दीखती थी वह, उन्हीं की तरह अमरीकी पहनावा, तौर-तरीके, बातचीत का लहजा और खुशमिज़ाज़।

हिंदुस्तान में साल भर रह कर लौटने के बाद कुछ तबदीली ज़रूर दीखी थी मुझे अनन्या में। सबसे पहली बात तो पहनावे की थी। वह जब-जब मुझसे मिलने आई, रंगीन छपे कपड़े या कढ़ाई के कुरते सलवार पहने होती। उसका रंगों का चुनाव अमरीकी लड़कियों से फ़र्क हो गया था। अब वह काले-भूरे या सलेटी रंगों के स्कर्ट-ब्लाउज़ या पैटो की जगह हमेशा खिले हुए रंग पहने होती। सलवार कमीज़ न हो तो भी कपड़ों का डिज़ाईन भारतीय किस्म का होता। एक बार वह मेरी साड़ी पर ग़ौर करती हुई बोली थी, "आपकी साड़ियाँ बहुत खूबसूरत होती हैं।"
फिर कुछ रुक कर कहा, "मेरी मम्मी कभी साड़ी नहीं पहनती, हमेशा पश्चिमी पोशाक पहनती है।"

अब अपने सामने बैठी उस महिला को देख, अनन्या का उस वाक्य को कहते समय चेहरे का भाव याद कर मैं सोच रही थी कि यह महिला भी कहीं ज़्यादा गरिमामयी और नयनप्रिय लगती अगर इसके जिस्म के बेढब मोड़-जोड़ इस तरह इसके कसे पैंट-टॉप्स से न झाक रहे होते तो। लेकिन इस पहनावे में ये खूब चुस्त-दुरुस्त दीख रही है, इसमें कोई शक नहीं। अपनी डॉक्टरी प्रैक्टिस में इसके लिए यही पहनावा सहूलियत का होगा।

भारत से लौटकर अनन्या ने यह भी बतलाया था कि वह वहाँ साल भर कत्थक नृत्य सीखती रही थी और यहाँ अमरीका में भी उसे कत्थक सिखाने वाली गुरु मिल गई है - इसलिए वह बी. ए. की शिक्षा नृत्य के मुख्य विषय के साथ ख़त्म करेगी और इसके लिए उसे विभागाध्यक्ष की विशेष अनुमति भी मिल गई है। साथ ही चूँकि हिंदी भाषा भी अच्छी तरह सीख ली थी इसलिए अब उसने मेरे हिंदी साहित्य के कोर्स में भी दाखिला ले लिया था। कुछ दिन बाद वह मुझसे बोली थी कि अपनी थीसिस भी वह हिंदी साहित्य या नृत्य के विषय पर ही लिखना चाहती है। क्या मैं उसकी सुपरवाइज़र बनने को राज़ी हो जाऊँगी? और मैंने खुशी से हाँ कर दी थी।

थीसिस के विषय पर बात करने के सिलसिले में ही एक दिन उसने मुझे घर पर फ़ोन किया था और मिलने चली आई थी। इसके बाद वह कई बार घर पर किसी न किसी बात के सिलसिले में आ जाती थी और घंटो अपने भारत के अनुभवों की या घर की बातें करती रहतीं। कभी-कभी मुझे लगता उसके भीतर हिंदुस्तान की ही एक ज़रूरत बन गई है जिसे वह मेरे हिंदी भाषा और साहित्य या नृत्य द्वारा पूरा करने की कोशिश करती रहती है। क्योंकि बातचीत का विषय हमेशा भारत से ही जुड़ा होता, वह अपनी बुआ, मौसियों और कज़न की बातें करती कि कितना प्यार देते हैं वे सब। कभी अपने नृत्य के गुरु के बारे में बताती। उसकी बातचीत में अक्सर अमरीका के प्रति आलोचना और भारत के प्रति स्नेह झलकता। वह कहने लगती, "पढ़ाई ख़त्म करके मैं भारत जाऊँगी। बड़ी अजीब बात है कि मेरे माँ-बाप को मेरा भारत जाना पसंद नहीं जबकि वे खुद वहीं के हैं।"

मैं यों ही पूछ बैठी थी, "तुम्हें क्या लगता है कि तुम कहाँ की हो?"
"मैं तो अमरीकी ही हूँ इसमें कोई शक नहीं, लेकिन मुझे यह देश पसंद नहीं यहाँ के लोग पसंद नहीं। यह बात और भी बुरी लगती है कि मेरे माँ-बाप भी इनके जैसे हैं। मेरी बड़ी बहन भी, उसने तो एक गोरे अमरीकी से शादी भी कर ली है। यों उसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं, अपनी पसंद की बात है। पर वैसे कह रही हूँ कि मेरे घर वाले अपने-आपको गोरों जैसा समझते हैं, उन्हीं की तरह व्यवहार करते हैं। पहले मैं भी उनकी ही तरह थी पर अब समझ आने पर यह बात बड़ी अजीब-सी लगती है कि हम जो नहीं हैं वो बनने की कोशिश करें क़िसी और की नकल करें जबकि हमारा अपना कल्चर इतना अमीर है।"

कभी मैं उससे पूछ लेती कि भारत उसे क्यों इतना पसंद है तो उसके पास कोई बहुत साफ़ जवाब नहीं होता था सिवा कुछ चलती-सी बात के कि वहाँ के लोग ज़्यादा प्यारवाले, मिलनसार और भले हैं, यहाँ की तरह चालाक या निष्ठुर नहीं। मुझे लगता कि वह और भी शायद बहुत कुछ महसूस करती है और कहना चाहती है पर ठीक शब्द नहीं खोज पाती क्योंकि उसका वाक्य कुछ इस तरह ख़त्म होता कि बहुत कारण हैं, बहुत ज़्यादा कि वह सब गिना नहीं सकती। कभी इन कारणों में मौसम और रग शामिल हो जाते, कभी हवा और माहौल तो कभी नृत्य और संगीत और उनसे जुड़ी भारत की सांस्कृतिक संपन्नता।

कभी-कभी मुझे लगता कि उसे भारत से एक तरह का रूमानी जुड़ाव ही है। सच में जब वहाँ रहने लगेगी तो ऐसे बात नहीं करेगी। अभी सब कुछ ऊपर-ऊपर से ही देखा है इसने। पर ऐसा कुछ कहकर अभी से उसका मन तोड़ने की हिम्मत कभी नहीं की मैंने। यों भी रूमानी रिश्तों के बनने या टूटने में कार्य-कारण की कोई स्पष्ट तरतीब तो

रहती नहीं। इसलिए कोई ज़बरदस्ती तोड़ने की कोशिश करे भी तो परिणाम अनर्थ या प्रलय ही हो सकता है। फिर मैं अधिकार के साथ कह भी कैसे सकती हूँ कि यह रिश्ता रोमानी ही है।

एक बार बात-बात में वह ऐसा कुछ कह गई थी कि मुझे लगा था कि शायद भारत के साथ उसके रिश्ते को रूमानी कह कर मैं उसके साथ ज़्यादती कर रही हूँ। शायद वह कुछ और गहरे कहीं महसूस करती है पर वह ऐसा विषय है जिस पर साफ़ बात यहाँ कोई नहीं करता क्योंकि वह एक शर्मनाक घाव की तरह है जिसे हमेशा ढक दिया जाता है। फिर आख़िरकार वह एक संपन्न भारतीय परिवार की है। अमरीका की एक अभिजात यूनिवर्सिटी में पढ़ती है। उसका ऐसा कुछ कहना ढोंग ही लग सकता है कि सब कुछ होते हुए भी शिकायत। पर उसके उन वाक्यों ने मुझसे वह अकथनीय कह ही डाला था। बात वही भारत को लेकर ही थी। कहने लगी, "वहाँ जाकर मैं वहीं की हो जाती हूँ। कोई मुझसे यह नहीं पूछता कि मैं कहाँ से हूँ, मैं किसी को विदेशी नहीं लगती। और यहाँ जहाँ कि मैं पैदा हुई हूँ, जहाँ मेरा घर है, हमेशा से रहती आ रही हूँ, वहाँ हर नया मिलनेवाला सबसे पहले यह पूछता है कि मैं किस देश से हूँ जैसे कि मैं अमरीकी हो ही नहीं सकती। जबकि मैं भी उन्हीं की तरह यहाँ की नागरिक हूँ। यह सवाल चाहे मैंने अमरीकी कपड़े पहने हो या भारतीय, उठाया ही जाता है। दूसरी तरफ़ कोई गोरी लड़की अगर भारतीय पोशाक भी पहन ले तो भी उसे सब अमरीकी ही मानते हैं जैसे कि यह देश सिर्फ़ गोरों का ही हो।"

यों मेरे लिए यह समझ पाना मुश्किल था कि यह लड़की चाहती क्या है। एक तरफ़ हिंदुस्तानीपन बनाए रखने की बात करती है दूसरी तरफ़ इसे शिकायत है कि इसे अमरीकी नहीं माना जाता। क्या यह हिंदुस्तानीपन बनाए रखने की बात भी इसके विद्रोह का ही एक चेहरा है? आख़िर यह चाहती क्या है और जो वह चाहती है क्या उसे पाना मुमकिन है।
एकाध बार उसने मुझसे विभागाध्यक्ष के खिलाफ़ भी कुछ कहना शुरू किया था कि भारत के प्रति उनका रुख कुछ संवेदनशील नहीं। पर मैंने ज़्यादा तूल नहीं दी तो वह खामोश हो गई। फिर एक दिन वह निश्चित वक्त से कुछ देर बाद घर पर आई, अलमस्त, झूमती-झामती। मैंने कौतुहल दिखाया तो कहने लगी कि वह शॉपिंग करने हारलम गई थी। हारलम काले अमरीकियों का इलाका था जहाँ ज़्यादातर गोरे अमरीकी जाने से घबराते थे।
"आप कभी गई हैं हारलम? बहुत सस्ती चीज़ें मिलती हैं, ये देखिए यह स्वेटर सिर्फ़ दस डालर में मिला और यह टॉप छह में..."
वह थैले में से चीज़ें निकाल कर बड़े उत्साह से दिखलाती चली जा रही थी।

फिर पता लगा कि उसने अपार्टमेंट भी हारलम में ले लिया है। एक दिन मुझे चैलेंज-सा करती हुई बोली, "आप तो कभी नहीं आएगी मेरे अपार्टमेंट, हारलम में जो है, वहाँ कोई नहीं आना चाहता। सब डरते हैं। मुझको समझ नहीं आता सब डरते क्यों हैं ये लोग तो गोरों से ज़्यादा अच्छे हैं।"
उसकी बातचीत में गोरों का ही ज़िक्र दूसरी जाति के रूप में होता, कालों का नहीं।
इन दिनों वह बहुत उल्लास और उमंग से भरी दीखती। एक दिन किसी रौ में आकर बोली, "आपको एक खुशखबरी दूँ?"
"क्या बात है? आजकल खूब खुश दीखती हो?"
"हाँ बहुत खुश हूँ क्योंकि मुझे मेरा मनपसंद ब्वायफ्रेंड मिल गया है।"
"कंग्रेचुलेशन्स।"

वह जैसे कुछ और कहने को बेचैन थी पर मेरे सवाल के इंतज़ार में थी।
"आपने पूछा नहीं कि कौन..."
"हाँ बताओ।"
"एक काला लड़का है।"

वह कुछ पल मेरे जवाब-टिप्पणी का इंतज़ार करने के बाद बोली।
"आप शॉक्ड नहीं हुई। और सब को तो एकदम शॉक लगता है!"
"तुम्हारे माँ-बाप को मालूम है?"
"नहीं, वे तो एकदम गश खाकर गिर जाएँगे, अभी नहीं बताऊँगी।"

पल भर को मुझे लगा कहीं यह सबको चौकाने के लिए ही तो काले लड़के से दोस्ती नहीं कर रही। यह इसका अपने माँ-बाप के ख़िलाफ़ या अपने देश के गोरों के ख़िलाफ़ प्रछन्न द्रोह भी तो हो सकता है। प्रगट में मैंने पूछा,
"क्या शादी करने का सोच रही हो?"
"कर भी सकती हूँ पर अभी कुछ पता नहीं, यों कल शाम मैं उसके परिवार से मिली थी। बहुत अच्छे लोग हैं वे, बहुत वार्म और विनीत और बहुत सुसंस्कृत भी, यह लड़का जाज़ संगीत सीख रहा है। उसका पिता एक मशहूर कंपोज़र है, माँ भी गाती है, पूरा परिवार संगीत में है।"
"और तुम भी तुम भी तो संगीत में हो।"
उसके इंटेंस चेहरे पर पहली बार शर्मीली मुस्कान दिखी।
"वे लोग हिंदुस्तानी संगीत के बारे में भी जानना चाहते हैं, वे मेरी डांस परफार्मेंस में आएँगे। आप भी आएँगी न!"
"कब कर रही हो तुम?"
"अगले शनिवार आप ज़रूर आइएगा।"
"तुम तो क्लास के लिए भी छोटा सा नृत्य प्रदर्शन देनेवाली थी, उसका क्या हुआ?"
"आप चाहती है कि दूँ?"
"बिलकुल।"
"तो ज़रूर दूँगी। अगली क्लास में तारीख तय कर लेंगे।"

लेकिन उसके नृत्य प्रदर्शन में मैं नहीं जा सकी थी। क्लास में से और कोई भी नहीं जा सका था। न ही अगली क्लास में वह क्लास के प्रदर्शन की तारीख नियत करने के लिए वहाँ मौजूद थी। यहाँ तक कि उसके कई दिन बाद तक मैंने उसे देखा भी नहीं, वह क्लास में भी नहीं आई। मुझे फिक्र होने लगी कि इसने शायद थीसिस का काम तो शुरू ही नहीं किया होगा, कहीं ज़्यादा देर न हो जाए।

इसके बाद जब वह क्लास में आई तो मेरे थीसिस का सवाल उठाने पर उसने कहा कि वह इस बारे में पहले ही विभागाध्यक्ष प्रोफ़ेसर फिशर से बात कर चुकी है और अगले दिन उनसे मिलने वाली है। प्रोफ़ेसर फिशर का नाम लेते हुए उसके चेहरे पर अजीब उलझन-सी दीखी थी मुझे, जैसे कि कोई बड़ी मुसीबत में फँसने वाली हो। मेरे नृत्य प्रदर्शन की तारीख का पूछने पर रुखाई से बोली, "रहने दीजिए। किसी की दिलचस्पी तो है नहीं।"
"ऐसी बात तो नहीं।"
पर उसने चेहरे का रूखा भाव बनाए रखा और बात आगे बढ़ने नहीं दी। फिर मैंने उसके काले ब्वायफ्रेंड का हाल पूछा तो उसके चेहरे पर विद्रुप-सा झलका। धीरे से बोली, "ओह, देयर इज़ नथिंग सीरियस।"

लगा कि कुछ है तो मुझे बता नहीं पा रही। कहीं ऐसा तो नहीं कि इसने अपनी सहजता में मन ही मन उस काले परिवार को अपना लिया हो और वे अभी ऐसे अपनापे के लिए तैयार न हो। आख़िर उनकी दुनिया की ज़रूरत तो अनन्या को ही है, या इसे अपने माँ-बाप का भी डर।
वह फिर कुछ दिन ग़ायब रही। क्लास से कुछ देर पहले दफ्तर में आई तो परेशान सी लग रही थी कुछ बिखरी-बिखरी-सी। कहने लगी, "ये बस अपनी बात बोलती रहती है। न तो इनको मेरी बात समझ आती है और मैं मुँह खोलूँ तो झट ये कुछ कह कर चुप करा देती है मुझे। प्रोजेक्ट मेरा है या इनका, काम तो मुझे ही करना है मैं भी चुपचाप सुनती रही, करूँगी तो वही जो मुझे करना है।"

मैं समझ गई थी कि वह विभागाध्यक्ष से मिलकर आई है पर मैंने खुलासा जानने की कोई जिज्ञासा नहीं दिखाई। यों भी किसी प्रोफ़ेसर के ख़िलाफ़ छात्र की बात सुनना मेरी अपनी नैतिकता पर सवाल लगा देता था। पर चूँकि उसकी सुपरवाइज़र मुझी को होना था इससे मैंने उससे विषय के बारे में फ़ैसला लेने की बात कही। मैंने उसे विषय के बारे में एक-दो सुझाव भी दिए जो उसे अच्छे लगे। फिर वह बोली कि कल परसों तक फ़ैसला लेकर वह काम शुरू कर देगी।

इस दौरान मेरी विभागाध्यक्ष से भी बात हुई और वे बताने लगी कि अनन्या काफ़ी जटिल लड़की है सो उससे काम करवाने में मुझे दिक्कत तो होगी, अपने परिवार से भी उसकी तकरार चलती रहती है। पर मैंने आश्वासन दिया कि मुझे अनन्या के साथ कोई मुश्किल नहीं, वह पहले भी मेरे कोर्स ले चुकी है और अच्छा काम करती रही है।

अनन्या इस बार जब क्लास में आई तो बताने लगी कि विषय का निर्णय उसने ले लिया है पर वह मेरे सुझाए विषय को नहीं लेना चाहती और अपनी मर्ज़ी से काम करना चाहती है। मुझे उसकी यह बात अजीब-सी लगी पर कुछ कहना भी ठीक नहीं लगा। वह परेशान-सी भी थी। मुझसे पूछने लगी कि विभागाध्यक्ष हिंदुस्तान के ख़िलाफ़ लगते हैं तो मैंने कह दिया कि नहीं ऐसी कोई बात नहीं। उसे मेरी असहमति अच्छी नहीं लगी। क्लास के बाद मुझसे बोली, "इस क्लास में मैं कुछ सीखती नहीं, क्या आपके साथ इंडिविजुअल स्टड़ीज़ कर सकती हूँ।"

आधा सेमिस्टर बीतने को था और यों भी कोर्स कुछ आसान नहीं था। मुझे लगा वह बेबात ही ऐसा कर रही है क्योंकि इस क्लास में कम से कम आधे छात्र उसके स्तर के थे। मैंने कहा, "बात सिर्फ़ पढ़ने की ही नहीं, दूसरों के साथ विचारों के आदान-प्रदान की भी है। क्लास में रहोगी तो यह सब सहज होगा। यों इस सेमिस्टर मेरे पास अलग से वक्त निकालना भी मुमकिन नहीं होगा।"

फिर मैंने ग़ौर किया तो पाया कि क्लास में वह किसी से ज़्यादा बात नहीं करती थी। दूसरे छात्र आपस में काफ़ी मैत्रीभाव रखते थे, पर यह उनसे अलग-थलग ही रहती। एक दिन क्लास में औरतों के विषय पर बात होने लगी। ज़्यादातर विद्यार्थी भारत में औरतों के हालात पर शोक प्रगट कर रहे थे। अनन्या को यह सब अच्छा नहीं लग रहा था। वह बोल पड़ी, "ऐसा क्यों है कि हम जब भी भारत के बारे में बात करते हैं तो उसकी बुराई ही करते हैं जबकि भारत में तो औरतों की समस्या है ही नहीं।"

उसका यह कहना सभी को चौंका गया। सवालों की बौछार होने लगी कि ऐसा कैसे कह सकते हैं। अनन्या कहती गई, "भारत में औरतें आज़ाद हैं, वे जो चाहे करती हैं, मेरी सारी बुआ या मौसियाँ डॉक्टर-इंजिनीयर या प्रोफ़ेसर हैं। कोई उन्हें मन का काम करने से रोकता नहीं, सब औरतों की इज़्ज़त करते हैं। उनके साथ विनम्रता से पेश आते हैं, उनकी भावनाओं की क़दर करते हैं, उनकी पूजा करते हैं। औरतों की समस्या सिर्फ़ इस देश में है, यहाँ औरतों की कोई इज़्ज़त नहीं। उन्हें कमअक्ल, नीचा और ग़ैरज़रूरी समझा जाता है, वे यहाँ सिर्फ़ सेक्स का ऑब्जेक्ट मानी जाती है, इससे अलग उनकी कोई जगह नहीं।"

क्लास के दूसरे अमरीकी छात्र उसकी बात से भड़क गए। एक छात्रा बोली, "तुम बात क्या करती हो! भारत में तो औरते न अपनी मर्ज़ी से शादी कर सकती है न कहीं आ जा सकती है। पहनने ओढ़ने की इतनी छोटी-छोटी बातों पर जहाँ पहरे लगे हैं वहाँ तुम औरत को आज़ाद कहती हो!"

फिर सबके थैलों में से हिंदुस्तानी औरतों से जुड़ी एक-एक करके अनेकों समस्यायें निकाल कर मेज़ पर धरी गई, सती-प्रथा, बलात्कार, पति द्वारा प्रताड़ना, दहेज-हत्याएँ, विधवा-विडंबना। एक दूसरी छात्रा बोली, "भारत में तो लड़की के कुमारी होने को इतनी अहमियत दी जाती है कि उसके बिना शादी तक होना मुश्किल है, जबकि आदमी खुद जिस किसी से जो कुछ भी करे।"
अनन्या बोली, "नहीं अब ऐसा नहीं है मुझसे बहुत से लड़के शादी करना चाहते थे पर मैं तो कुमारी नहीं।"
"पर क्या तुमने बता दिया था कि तुम कुमारी नहीं हो, ज़रा बताकर तो देखती।"
"ख़ैर! ऐसा कोई सवाल तो उठा ही नहीं वर्ना बता देती और मुझे नहीं लगता कि उससे कुछ फ़र्क पड़ता।"
वह कुछ ढीली पड़ी। फिर भी अपनी बात पर अड़ी रही।
"मैं यह नहीं कहती कि भारत में कोई समस्या है ही नहीं पर ज़्यादा समस्याएँ अमरीका में हैं। यहाँ कहीं ज़्यादा बलात्कार होता है, कहीं ज़्यादा घरेलू हिंसा की शिकार औरतें होती हैं। पर जब अमरीका के बारे में हम बात करते हैं तो यहाँ की तरक्की, उच्च शिक्षा और अमारत की बात करते हैं और जब भारत की बात हो तो हमेशा कोई न कोई नकारात्मक पक्ष ही उठाया जाता है। क्या मैं पूछ सकती हूँ कि ऐसा क्यों होता है?"

वह बात कहते-कहते बहुत आवेश में आ गई थी कि क्लास में अचानक बड़ी अटपटी खामोशी छा गई। अब मेरा दखल ज़रूरी था।

अनन्या की इस बात से मैं खुद सहमत नहीं थी कि हिंदुस्तान में औरतों की समस्या है ही नहीं। मैंने कहा, "देखो अनन्या आत्मालोचन आत्मविकास की ही एक प्रक्रिया है। इसलिए आलोचना को नकारात्मक मान उससे दूर भागना कोई अकल की बात नहीं। दूसरे यह कहना कि भारत में औरतें आज़ाद हैं और मनमर्ज़ी से जो चाहे करती हैं तो वह भी ग़लत है। अभी तुमने भारत को देखा ही कितना है। एक बार वहाँ रहने लगोगी तो औरतों की असली हालत पता लगेगी। तुम्हारी यही मौसियाँ और बुआएँ तब तुम्हें अंदरूनी सच्चाइयाँ बतलाएगी।"

मेरी बात एक तरह से उस विवाद में हार-जीत का अंतिम फ़ैसला सुना रही थी। मैंने देखा अनन्या के चेहरे पर अचानक मुर्दनी सी छाने लगी है। जैसे कि एक ही व्यक्ति जिस पर उसे भरोसा था उसने भी उसका साथ न दिया था और अचानक वह एकदम अकेली पड़ गई थी। वह उठ खड़ी हुई, "मुझे आज जल्दी जाना है, माफ़ कीजिएगा मैं चलूँगी।"

मुझे जैसे कुछ ध्यान हो आया कि वह कह रही थी एक बजे उसे कहीं जाना है पर अभी तो साढ़े बारह ही थे।
"पर तुमने तो एक बजे जाना था न?"
वह कुछ परेशान सी बोली, "ओह! एक बजे जाना था, तो एक नहीं बजा लेकिन मुझे तो जाना है।"
वह कमरे से बाहर हो गई तो एक लड़की ने कहा, "बड़ी अजीब-सी लड़की है यह! क्या आप इसे जानती हैं?"
यों अनन्या का प्रस्थान अजीब तो सभी को लगा था पर इस वजह से उसका खुद यह विशेषण बन जाना मुझे भाया नहीं था।

"अजीब तो नहीं। कुछ अपने ही ढंग से सोचती है यह लड़की। आज शायद कुछ डिस्टर्ब-सी थी, क्या जाने क्या कुछ होता रहता है तुम जवान लोगों की दुनिया में।" और मेरा आख़िरी वाक्य जिस अंदाज़ से कहा गया था, सब मंद-मंद मुस्कुरा पड़े। पर कहने के बाद मैं खुद ही कुछ उदास हो आई थी। मन में कुछ कचोटता-सा रहा जबकि वजह बहुत साफ़ नहीं थी।

अनन्या अगली क्लास में फिर नदारद थी। उसके बाद वाली क्लास में वह कुछ देर से आई थी। पर जो हाल उसने अपना कर रखा था अगर सड़क पर मिल जाती तो मैं पहचान भी न पाती। बाल एकदम बिख़रे जैसे कि दिनों से कंघी न फेरी गई हों। चेहरा मैला और बुसा-बुसा-सा जैसे कि चार दिन से धोया न हो। और सबसे ज़्यादा हैरानी की बात तो यह थी कि उसने सर से पैर तक काले कपड़े चढ़ाए हुए थे, काली स्कर्ट, काला ब्लाउज़ और काले ही स्टाकिंग्ज़ और बूट। जबकि हिंदुस्तान से लौटने के बाद से उसे खिले रंग पहने ही देखा था। उसने एक बार खुद मुझसे यह कहा था कि सारी हिंदुस्तानी लड़कियाँ जब खूबसूरत, आकर्षक और स्मार्ट लगना चाहती हैं तो काला लिबास पहनती हैं। उन पर काला रंग फबता भी है और एक अमरीकी ढंग का अभिजात सौंदर्य आ जाता है। इसलिए अगर किसी पार्टी में जाइए तो ९० प्रतिशत अमरीकी-हिंदुस्तानी लड़कियाँ काले रंग की ही अलग-अलग किस्म की पोशाकें पहने होगी। पर वह उस भेड़चाल में शामिल नहीं होना चाहती थी। और भारत जाने के बाद उसे विकल्प मिल भी गया था। अब उसके पास बेशुमार खिले रंगों के पहनावे थे। दूसरी हैरानी की बात यह थी कि वह कोकाकोला की बोतल मुँह में लगा चुस्कियाँ ले रही थीं जबकि मुझे याद था कि मेरे घर पर इसने कोक पीने से इंकार कर दिया था और कहती थी कि वह सिर्फ़ चाय या जूस ही पीती है, कोक या दूसरे सोडेवाले अमरीकी पेय नहीं पीती।

वह सबसे पीछे चुपचाप बैठ गई थी। मैंने अपने-आप से कहा कि क्लास ख़त्म होने के बाद ज़रूर इससे बात करूँगी। इसका यह व्यवहार कुछ सहज नहीं लगता। क्लास ख़त्म होने में अभी आधा घंटा बचा था कि वह झटके से उठी और सीधे दरवाज़े की राह ली। इससे पहले कि मैं कुछ कहती वह हवा के तेज़ झोंके की तरह मेरी कक्षा की हद के बाहर हो चुकी थी। मैंने सोचा इसका मूड कुछ ऑफ लगता है आज। शायद क्लास में उतनी सहज नहीं। घर से खुद ही मुझे फ़ोन करेगी नहीं तो चलो अगली क्लास में बात करूँगी। छात्र जब तक खुद न मदद मागे, उनके व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप यों भी उचित नहीं।

ऐसा तो मैं कभी नहीं सोच सकती थी कि वही क्लास उसके लिए मेरी आख़िरी क्लास थी। सोच पाती तो चाहे उसी दिन उसे रोक लिया होता।
उसके बाद तो बस फ़ोन पर फ़ोन! बस आवाज़ों का ही एक लंबा सिलसिला।

अनन्या ने ही मेरी ऑसरिंग मशीन पर संदेश छोड़ा हुआ था, "प्लीज़ प्रोफ़ेसर वर्मा! इस क्लास में मैं सच में कुछ नहीं सीखती। क्या मैं आपसे अलग से नहीं मिल सकती? भारत जाकर मैंने बहुत कुछ सीख लिया है, इन सब क्लास के लोगों को कुछ नहीं पता। ये लोग कुछ नहीं समझते, न समझना चाहते हैं। सब एक ही तरह से बात करते हैं, बस एक एटीट्यूड सा बना है भारत के बारे में। मैं आपको दुबारा फ़ोन करूँगी, मुझे इस बारे में आपसे बात ज़रूर करनी है।"
फिर एक फ़ोन था विभागाध्यक्ष का। फ़ोन उठाते ही बरसे थे स्वर।

"तुम्हें पता है कल क्या किया इसने। एकदम नाइटगाऊन में नंगे पैर चली आई मेरे ऑफ़िस, ऊँचा-ऊँचा चिल्लाने लगी। मैंने कुछ कहा तो मुझ पर हमला करने लगी, हाँ मेरे शरीर पर हमला, मैंने तुम्हें कहा था न शी इज स्किटज़ोफरैनिक, शी इज़ सिक।"
"किसकी बात कर रही हैं आप, मैं कुछ समझी नहीं।"
"अरे उसी अनन्या की! और किसकी! ये तो शुक्र करो कि मेरी एक छात्रा मेरे पास बैठी थी। वही बीच में आ गई वर्ना इसने तो मुझे मार डालना था। पता नहीं हो क्या गया है इसे, सोचो तो, ठंड में नंगे पैर, सड़क पर नंगे पैर क़हती है कि हिंदुस्तान में हज़ारों लोग नंगे पाँव चलते हैं, इसमें बड़ी बात क्या है। हर वक्त इंडिया और अमरीका की तुलना करती रहती है। पता नहीं क्या फितूर भर गया है इसके दिमाग में! तुम्हारे साथ कुछ उल्टा सीधा व्यवहार नहीं किया इसने?"
"इधर कुछ फ़र्क तो दिख रहा था उसके बर्ताव में। उस दिन क्लास से बिना कुछ बताए उठकर चली गई लेकिन ऐसा कुछ अवांछित व्यवहार तो नहीं।"
"अरे मैं कहती हूँ वो लड़की पागल है, मेरे पीछे पड़ गई कि मैं इंडिया का अपमान करती हूँ। इंडियन्स के लिए मेरे मन में इज़्ज़त नहीं कि सारे अमरीकी इंपीरियलिस्ट और रेसिस्ट है, मैं कहती हूँ पढ़ाई वगैरह उसके बस की नहीं।"
"अभी वह है कहाँ।"
"वहीं जहाँ उसे होना चाहिए था, दफ्तर से निकल कर सुना है उसने टैक्सी ली थी, टैक्सी वाले से बोली कि एयरपोर्ट ले चलो। वह कोई भलामानुस था, उसका पहनावा, नंगे पैर वगैरह देख कर समझ गया कि हालत ठीक नहीं सो सीधे हस्पताल ले गया, अभी वही दाखिल है। उसके माँ बाप को इत्तला दे दी गई है।"
एक फ़ोन डीन का था, "अब वह कैंपस पर नहीं रह सकती, अगर आप सोचती है कि वह काम कर सकती है तो अपने घर से ही काम करके भेज दे। यहाँ उसका रहना ख़तरे से खाली नहीं। उसने प्रोफ़ेसर फिशर पर हमला किया है, वह किसी के लिए भी खतरनाक हो सकती है।"
मैं कहती रहती हूँ, "पर ऐसा तो कुछ मुझे लगा नहीं था, वह ठीक से ही काम कर रही थी और सामान्यतः बड़ी मेधावी और मेहनती है, यह सब..."

लेकिन मेरी बात का असर नहीं होता। जिस पर एक बार संदेह का धब्बा लग गया अब जाने क्या कुछ करना होगा संदेह मिटाने को। उल्टे और भी बढ़ी-चढ़ी कहानियाँ क़्या पता कब आक्रामक हो जाए, दौरा पड़ जाए। यों मैं खुद भी दावे के साथ क्या पैरवी कर सकती थी। मैं तो बस हैरान परेशान थी कि कितना कुछ उसके भीतर घट रहा था जिससे मैं इस कदर अनजान रही, बहुत कुछ देखकर भी कितना कुछ नहीं देख पाई! विभागाध्यक्ष का फिर फ़ोन, "उससे कुछ नहीं होगा, पढ़ाई करना उसके बस की बात नहीं, आई डोंट थिंक यू शुड वेस्ट योअर टाईम।"

मेरी कुछ समझ नहीं पड़ता है। अस्पताल में उसके माँ बाप के इलावा और कोई नहीं मिल सकता। अब उसकी माँ बैठी है मेरे सामने! क्षुब्ध, त्रस्त। अंगारे सी जलती और जला देने को आतुर! "आप काम बता दीजिए न, मैं सारा काम करवा लूँगी, वह ठीक हो जाएगी। इस प्रोफ़ेसर फिशर ने उस पर इतना दबाव डाला कि दो हफ्ते के अंदर-अंदर

उसे थीसिस ख़त्म करना ही है। बस काम का प्रेशर बढ़ जाने से इसका ब्रेकडाउन हो गया है, डॉक्टर कहता है कि तीनेक महीने में वह एकदम दुरूस्त हो जाएगी और कालेज का काम कर सकेगी। आप बस इतना कर दीजिए कि कल ही सारे मैटेरियल की फ़ोटोकापी बना कर दे दीजिए। आगे मैं सँभाल लूँगी।"

उसे यह समझ नहीं आ रहा था कि बेटी की मौजूदा हालत के बारे में मुझे कितना बताए या मुझसे कितना छुपाए, ना ही उसे यह अंदाज़ा था कि मुझे कितना मालूम है या नहीं मालूम। इस वक्त उसकी एक ही वृत्ति थी कि किसी तरह उसकी बेटी को डिग्री मिल जाए। बेटी को सचमुच में क्या हुआ है इस पर ग़ौर करने से भी ज़्यादा बी.ए. की डिग्री की फ़िक्र थी उसे। मन उदास-सा हो गया। लगा कि यहाँ से घर जाकर भी क्या दुरूस्त हो पाएगी वह! उसकी माँ कहे जा रही थी,
"मैं तो पहले ही नहीं चाहती थी कि इतनी दूर न्यूयार्क में आकर पढ़ाई करे, मेरे पास होती तो अब तक बी.ए. ख़त्म कर चुकी होती, इसी की ज़िद थी आने की, अब तो यहाँ कभी नहीं भेजूँगी।"

मुझे बार-बार बस एक ही बात ध्यान आती रही कि उस दिन उसने काला लिबास क्यों पहना था और जो पहना था तो अगले ही दिन वह प्रोफ़ेसर फिशर के कमरे में इस तरह से लड़ने क्योंकर पहुँच गई। किस हक से लड़ रही थी, एक अमरीकी के हक से या कि अमरीका में रहने वाले हिंदुस्तानी हक से! या कि कुछ और ही गणित था उसका, तर्क से परे हम सबकी समझ से परे, डीन, प्रोफ़ेसर फिशर या इस समाने बैठी उसकी माँ की आवाज़ों के परे...

एक व्यक्ति क्या कुछ हो सकता है, कितने-कितने तरह के शब्दों में बँधा-तुला, कितनी-कितनी किस्म की आवाज़ों में कैद। यह मेरी समझ की कमी है या उन आवाज़ों की जिनसे मैं आज बुरी तरह से घिर चुकी हूँ, आवाज़ों के ये टुकड़े उन बर्फ़ के ओलों की तरह है जो अर्थ बनने से पहले ही पिघल कर तबाह हो जाते हैं और मैं सुनती हूँ सिर्फ़ उस टूटने को, उस चिथड़ा-चिथड़ा होती हस्ती को जो अपनी ही कोई आवाज़ बुन रही है, बस डर लगता है कि आवाज़ बुने जाने से पहले ही कहीं टूट-बिखर न जाए।

(१ दिसंबर २००६ को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)

गुनहगार

वह घूरे जा रही थी अखबार के उसी पन्ने पर जहाँ इश्तहार छपा था, उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि यह इश्तहार उसके लिए है। यों अख़बारों के इश्तहारों से शादियों के काम लेना उसके लिए नई बात नहीं थी। बेटी की शादी के लिए इसी तरह से वर चुना गया था। यहाँ तक कि छोटे बेटे के लिए भी इश्तहार निकलवाया था। वह तो यों हो गया कि इश्तहार से बात बनी नहीं और बेटा फिर अपनी पसंद की ही फिरंगी दुल्हन ले आया। वही दुल्हन अब कहती थी कि "युअर मदर शुड हैव हर ओन इन्डिपेंडेंट लाइफ़। मेरी माँ ने भी तो दूसरी शादी की है। इसमे कोई बड़ी बात नहीं। यहाँ जो रहता है उसे यहीं के रीति-रिवाज के अनुसार चलना चाहिए।"

"ममी कुछ गलत तो नहीं कहती वह?" बेटा बीवी की हाँ में हाँ मिलाता है। इस सब का नतीजा यह कि उसका रहने का कोई घर नहीं। बेटे के पास रहने का उसका हक छिन चुका है। छिनना तो क्या कभी दिया ही नहीं गया। यही उम्मीद की कि माँ कभी-कभार मेहमान बनके तो आ सकती है पर अपनी अकेली ज़िंदगी का बचा-खुचा हिस्सा उन्ही के सिरहाने काटने नहीं आएँगी। बेटी के पास जाओ तो जँवाई इस तरह घूरता है कि बेटा तो रखता नहीं अब हमारे सिर पर बोझ क्यों उतार रही हो अपना। जँवाई की तो ज़िम्मेदारी है नहीं कि सास की देखभाल करे।

कहाँ जाए रत्ना? अब क्या करे?
अख़बार के खुले सफ़े पर फिर से निगाह चली जाती है! कैसे कर सकी वह?

पर उसी ने तो निकलवाया है कि एक साठ बरस की विधवा विवाह के लिए उपयुक्त पात्र खेज रही है?
उपयुक्त पात्र से क्या मतलब? शायद वह खुद भी इस मामले में साफ़ नहीं?
हाँ कोई लूला-लंगड़ा न हो! इतना तो साफ़ कह सकती है?
पर कहना चाहती क्या है?
मन किससे मिलेगा? क्या इसे साफ़ तौर पर लिखा जा सकता है?
क्या ऐसा कोई होगा जिसके साथ रहा जा सके? कहने को तो यही कहा जाता है और वही कहा है उसने, अधेड़ उम्र का, पंजाबी हो पर किसी और प्रांत का भी हो सकता है, स्वस्थ, शराब न पीनेवाला, ऐब और बीमारियों से मुक्त, विधुर तलाकशुदा या अविवाहित।

चाहे छोटी बहन और जीजे ने ही सुझाया था यह सब पता नहीं गंभीर थे कि चस्के ले रहे थे, मन ही मन तो वे दोनों भी हँसते ही होंगे पता नहीं किस-किस रिश्तेदार से चाहे बातें भी बनाते फिरें! कितना छिछला, कितना छिछेरा समझेंगे सब मन में उसे! वैसे तो जीजा-बहन बहुत मददगार बनते हैं, सलाह तो उन्हीं की दी हुई थी, उसको उबारने का ही यत्न था पर अगर रत्ना खुद न हामी भरती तो किसी को क्या पड़ी थी इश्तहार निकलवाने की असली मर्ज़ी तो उसकी अपनी ही थी न झुठलाएगी कैसे इस बात को!

मर्ज़ी थी किस बात की यह वह शायद खुद भी नहीं जानती। क्या सचमुच शादी रचाएगी किसी दूसरे पुरुष से? छिःछिः! कितनी घिनौनी बात है! और रत्ना के रोंगटे भी खड़े हो जाते! भीतर कहीं कुछ नरम सी कुम्हलायी हुई सी पंखुरी अंगड़ाई लेने लगती। कहीं सचमुच? और नई-नवेली दुल्हन-सी वह खुद से भी शर्मा जाती। कोई पुरुष सचमुच उसे छुएगा? उसे अपनाएगा- उसका अपना होगा? बहुत अपना? अपने सी बातें करेगा ? उसका चेहरा, उसका जिस्म, उसके हाथ, उसके होंठ, उसकी आवाज़, उसकी मुस्कान, उसका सबकुछ इतना पास, इतना पहचाना? रत्ना सोचकर सिहर उठती है!

बच्चों की परवरिश में लगा उसका विधवा शरीर किसी कुँवारी से भी ज़्यादा कुआँरा हो चुका है- क्योंकि वहाँ किसी के आने का इंतज़ार नहीं, किसी के कभी न आने का मूक स्वीकार है। लकड़ी के गुलाब की तरह, जो एक बार खिलकर खिला ही रहे चाहे कोई आए न आए, उसे तो खिलना ही है। उन सब को अपने खिलाव से पोसना ही है जो उस पर निर्भर हैं। और अब तो कोई निर्भर नहीं, सब अपने-अपने ठिकाने पर पहुंच चुके हैं, तो किसके लिए खिला रहे गुलाब? क्या झर कर खत्म हो? या दे जाए किसी और को अपनी रंगत का सुख और पा जाए खुद उस सुख का भोग? घबरा जाती है रत्ना, उस भोग के नाम से भी।

साथ में पढ़े थे तस्वीरों के साथ भेजे गए उम्मीदवारों के जवाब भी, उसकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी कि उनको गौर से देख कुछ सोचे, फ़ैसला लेने की बात तो दूर रही। भीतर एक ही बात चक्रवात की तरह घूम रही थी। आसमान में बैठे प्रताप कुमार क्या कह रहे होंगे? क्या हो गया है उनकी पत्नी को, अब तक जो उनको अनथक पूजती रही, हमेशा उनकी याद को सीने से लगा जीवन का हर कर्म सही ढंग से निभाती रही, आज इस पर तुल आई है! यह क्या हो गया है उनकी विधवा सुपत्नी को! और रत्ना के भीतर जैसे कोई तूफ़ान घिरे जा रहा था। यह हो कैसे गया? क्यों हो गया? प्रताप की स्मृति को क्यों लांछित कर रही है, प्रताप जी ने तो सिर्फ़ उसे प्यार दिया, बहुत-बहुत प्यार दिया, यहाँ तक कि उसे अपने परिवार वालों के बोझ से भी बचाए रखा, ननद आके साथ रहना चाहती थी, पैसे भेज दिए पढ़ाई के लिए फिर दहेज के लिए भी, कहा कि रत्ना को कोई तकलीफ़ नहीं देगा। प्यार दिया इसीसे अभी तक कसक बनी ही हुई है चालीस बरस बीत गए उस विवाह को आज भी वह प्रताप की ही दुल्हन है।

सचमुच कोई शिकायतें तो याद ही नहीं, हैं भी तो प्यार के ही उलाहने, वर्ना मौके-बेमौके पर दिल को छील जाने वाले उनकी अनुपस्थिति के अहसास! तो फिर यह इश्तहार किसलिए?

कभी ऐसा कर पाएगी, उसने सोचा नहीं था,
लेकिन और कोई चारा बचा है सिवा निपट अकेलेपन के!
कोई तो उसका नहीं! तब वह क्यों किसी की परवाह करे!
विधवा हुई थी तो अकेली ही थी पर कभी उस तरह अकेला होना महसूस नहीं हुआ। किसी न किसी को साथ देते पाया ही। फिर अपने बच्चे तो हरदम घेरे ही रहते थे। अब उम्र का तकाज़ा, परदेस के रीतिरिवाज, कहीं कुछ बात बन ही नहीं रही, न किसी से शिकायत करने जैसी, न खुद के जीने का ही कोई बंदोबस्त। तो वह ऐसा सिर्फ़ अपने बच्चों को, अपने रिश्तेदारों को सज़ा देने के लिए सिर्फ़ सज़ा देने के लिए ही कर रही है! यह बताने के लिए कि तुम्हारे घर में मेरे लिए जगह नहीं तो मेरे यहाँ भी तुम्हारी जगह तुम्हारा ख़याल नहीं!

उन को तो अंदाज़ भी नहीं होगा?

अगर उनको अंदाज़ ही नहीं तो फिर
पर हाँ अगर सचमुच विवाह कर ले तो पता तो चलेगा ही, तब चोट भी खाएँगे! क्या पता चोट लगे ही न, किसी को कुछ फ़र्क पड़े ही न!
तब इस कुकर्म का लाभ ही क्या?

लेकिन देखा जाए तो तब वह सुख से जी सकती है। कोई उसके नए-नवेले जीवन में तब दखलअंदाज़ी तो नहीं करेगा न! न ही उसे किसी को कोई किफ़ायत देनी पड़ेगी! और क्या सचमुच वह उनको चोट पहुँचाना चाहती है?

चोट पहुँचेगी कि नहीं पर उनका रास्ता साफ़ हो जाएगा? अब रत्ना को आश्रय देने का बोझ कोई महसूस नहीं करेगा- चाहे भाई-बहन हों या अपने बच्चे! कोई नहीं कहेगा कि यहाँ तो सबको अपना-अपना इंतज़ाम करना होता है। किसी को दूसरे का मुँह नहीं जोहना चाहिए। सब कहेंगे अब किसी को रत्ना की खोजखबर लगाने की ज़रूरत नहीं, अपना मज़े से रह रही है"- चाहे बेचारी का दम ही घुट रहा हो! किसी को क्या परवाह! रत्ना ने हिम्मत करके एक लिफ़ाफ़ा खोला- अधेड़ से व्यक्ति की तस्वीर, खिचड़ी दाढ़ी और गंज, वितृष्णा-सी हुई उस को, कहाँ उसके पति प्रताप और कहाँ यह बूढ़ा-खूसट? प्रताप आज होते तो क्या इस तरह लगते? नहीं, कतई नहीं, उनकी सज्जनता उनकी गरिमा तो आज भी वैसी ही होती। ठीक है, चेहरे पर उम्र आ भी जाए पर व्यक्ति का व्यक्तित्व तो बदलता नहीं। यों उनका बूढ़ापन वह नहीं देख पाती। अपने हर बिम्ब में वे युवा ही होते। उसी उम्र में छप गया था चेहरा जिस में गए थे। उसके छत्तीस वर्ष के युवा प्रताप कुमार, बल्कि जो तस्वीर घर में लगी थी, वह साल भर पहले की थी। वही चेहरा था अब रत्ना की आँखों में, तस्वीर वाला चेहरा, असल चेहरा तो जाने कब का धुंधला-सा गया था।

बेटा भी तो लगभग उसी उम्र में था- कितना मिलता-जुलता है पापा से- पर उससे क्या? वह भी कहाँ है अब रत्ना की दुनिया में? सब अपने-अपने दड़बे में घुसे हैं, अपनी-अपनी परवाह, किसी दूसरे की खोज ख़बर नहीं, चिंता नहीं, जैसे कि दुनिया सिर्फ़ उनके अपने गिर्द ही घूमती है, उसके बाहर कुछ नहीं। अपने भाई अपनी बहनें, अपने बेटे, अपनी बेटियाँ- फिर भी इस बड़े से संसार में कोई अपना नहीं- सबको लगता है कि कहीं रत्ना उनके साथ न रहने लग जाए! पता नहीं कितना बड़ा मसला खड़ा हो जाएगा उनकी ज़िंदगियों में! रत्ना अब एक बहन या माँ नहीं एक मसला थी- एक मुसीबत- एक समस्या- जिसका कोई हल नहीं था। यह भी कोई शाप था क्या? इतनी उम्र में पति चल बसे थे। अब बेटा दुनिया में होकर भी उससे दूर हो गया है! एक-एक करके सब का साथ छूटता गया। बस यहीं तक साथ होना था! अब बस अपना अकेलापन, अपने आप का बोझ, कितनों के बोझ ढोए? अब अपना बोझ ढोने के भी काबिल नहीं। कोई साथ चाहिए- बोझ ढोने में मदद करनेवाला! क्या ऐसा भी कभी होता है?

रत्ना मेज पर पड़ी हर तस्वीर को ऐसे देख रही थी जैसे किसी से चोरी कर रही हो- जबकि उसकी अपनी बेटी ने ही उसे सलाह दी थी कि, "ममी आपको बुढ़ापे में अपना कोई साथी ढूँढ लेना चाहिए। यहाँ सब ऐसे ही करते हैं। मेरी सहेली की माँ तो अस्सी की होने वाली हैं और वे छयासी साल के अपने एक पड़ोसी के साथ जुड गई हैं। दोनों मजे से रहते हैं, एक दूसरे का साथ भी रहता है एक दूसरे की देखभाल भी करते हैं। वर्ना ममी पोते-पोतियों के पास कहाँ वक्त है।"

बहन ने अपना सुझाव दिया था, "बहन जी आपको अपनी ज़िंदगी अपने ढंग से, अपने बूते पर जीनी चाहिए। आपको भी कोई बॉयफ्रेंड बना लेना चाहिए। यहाँ तो बूढ़े-बूढ़े लोग शादी करते हैं। यहाँ इसमें कोई बुराई नहीं मानी जाती। उल्टे लोग खुश ही होते हैं कि आपने बुढ़ापे में भी ज़िंदगी को रसमय बना लिया। वर्ना भाई-बहनों के आसरे कहीं बुढ़ापा कटता हैं? किसी के खाविंद को उज्र होगा तो किसी की बीवी को। भाईबहन शादी के बाद कहाँ अपने रहते हैं? पहले अपने बीवी-बच्चों को ही सँवारेंगे आखिर..."

रत्ना के चेहरे पर विद्रूप की लहर-सी फैल गई। पागल हे गई है बहन भी, मज़ाक सूझता है इसे। फिर गुस्से में जैसे सारी दुनिया से बदला लेती हुई आवाज़ में कहा, "ठीक है तू ढूँढ दे मुझे आदमी, कर लूँगी मैं दूसरी शादी, बुढापे की शादी।"
जीजा पूरे ज़ोर से बोला, "ठीक है मैं अखबार में इश्तहार दे दूँगा। फिर जवाब आएँगे तो मिल लेना। मिलना आपको ही पड़ेगा। मुझे मत घसीटना इस झंझट में।"
"ठीक है तुम इश्तहार दे दो।"
रत्ना उत्साहित थी- एक खेल का सा मज़ा भी था और कुछ पा लेने की उम्मीद भी।
साथ ही भीतर कहीं रत्ना इतना उजड़ा इतना अकेला महसूस करती रही थी कि कहीं लगा कि यह इलाज भी करके देख लिया जाए, शायद मन को कुछ सुकून मिल जाए! सच यह था कि रत्ना के भीतर कहीं कोई दबी हुई ललक भी थी। ज़रा देखें तो क्या होता है! कैसा पुरुष होगा? किस तरह का व्यक्ति रत्ना को पसंद करेगा? उम्र के इस पहलू पर आकर किस तरह का मज़ा होता है?

और सबसे बड़ी बात तो यह कि यह अकेला बुढापा काटना बड़ा दूभर है। बीमार हो जाओ तो कोई पूछनेवाला नहीं! पोते-पोतियों से रत्ना कुछ उम्मीद कर नहीं रही थी। यों भी अभी वे बहुत छोटे थे। पर हैरानी तो अपने बेटे पर ही थी जिसका सारा धरम-करम अब उसकी औरत ही थी। बेटी को भी अपने पति के मारे मुँह मोड़ लेना पड़ा। और अगर वह सचमुच किसी दूसरे पुरुष के साथ रहने लगे तो सब क्या इसे स्वीकार पाएँगे? ओह कितनी शर्म आएगी उन्हें। चाचे-ताए के आगे सबकी नाक कट जाएगी। वे कहेंगे, " देखा दूसरा आदमी कर लिया है रत्ना ने।" ओह कैसे सुनेगी लोगों की ऐसी बातें, कैसे चोट पहुँचा सकती है अपनों को? लेकिन रत्ना भी करे तो क्या? कैसे उठाए इस कभी न ख़त्म होने वाली ज़िंदगी का बोझ। जब तक जीना है, जीना तो है ही। तब कैसे जीना है?

क्या यही एक सुविधाजनक रास्ता नही है? बच्चों-रिश्तेदारें की भी ज़िम्मेदारी ख़त्म हो! वह मेज पर सभी तस्वीरें फैलाने लगी- ज़्यादा नहीं- चार ही लोगों ने जवाब दिया था। एक तलाकशुदा था बाकी दोनों की पत्नी की मृत्यु हो चुकी थी। एक उम्मीदवार तो अपने बेटे के साथ रह रहा था और उम्मीद कर रहा था कि अगर रिश्ता बन जाए तो वह रत्ना के घर में रहने चला आएगा। एक अमरीकी का ख़त भी था। वह भारत और पाकिस्तान रह चुका था और उसे किसी हिंदुस्तानी औरत के मिलने और उसके साथ जीवन गुज़ारने में दिलचस्पी होगी। उसकी यों तीन शादियाँ और तीन ही तलाक हो चुके थे। उसने यह भी लिखा था कि वह मानता है कि पत्नी के रूप में एशियाई औरतें ज़्यादा कोमल, भावनामयी और सेवापरक होती हैं- रत्ना ने मुँह बिचकाया, "साला सेवा करवाना चाहता है। अब मेरी सेवा करने वाली उम्र नहीं। मैं तो अपनी सेवा करवाना चाहती हूँ- मुझे क्या पड़ी है कि साठ साल की उम्र में यह दूसरी बीमारी पाल लूँ। इनके लिए खाना बनाओ, सफाइयाँ करो, आगे कम काम किया है ज़िंदगी में जो एक और मुसीबत पालूँ?"

उसे दूसरे पुरुष के विचार मात्र से ही घबराहट उठने लगी,
"कैसा ज़माना आ गया है? रत्ना की माँ आज ज़िंदा होतीं तो क्या कहतीं- विधवा बेटी दूसरी शादी कर रही है और वह भी साठ साल की उम्र में?

वह सचमुच अगर इन निवेदकों से मिली तो क्या सोचेगे वे अपने मन में? कैसी औरत है जो इस उम्र में इश्तहार दे रही है- उसकी हेठी तो नहीं होगी? उसको कमज़ोर चरित्र वाली तो नहीं समझा जाएगा? उसे याद है कि जब पंजाब में कालेज में थी तो उसकी जो कोई सहेली भी मरदों में दिलचस्पी लेती थी उसे "लूज़ कैरेक्टर" कह दिया जाता था।

रत्ना को सोच के शर्म आने लगी- शायद उसे भी कोई "लूज कैरेक्टर" समझेगा- सेक्स की भूखी समझेगा- जबकि ऐसी बात कतई नहीं- सारी उम्र तो प्रताप कुमार के नाम बिना शारीरिक भोग के निकाल दी। अब भला क्योंकर ऐसा करेगी? पर अकेलापन, यह निपट अकेलापन? इसका क्या इलाज करे?

और मन फिर उड़ने लगा- "मुझे तो कोई घुमानेवाला पति चाहिए, जिसे देस घूमने का शौक हो। जिसके पास गाड़ी हो और शौक भी और वे दोनों खूब दूर-दूर घूमने जाएँ, उसके कंधे पर सिर रख रत्ना अपना सारा दुख भूल जाएगी। उसकी बाँहों का घेरा रत्ना को हर आपत्ति से बचा लेगा। उसका मज़बूत हाथ जब रत्ना के हाथ को अपनी गिरफ्त में लेगा तो रत्ना की हर फ़िक्र भाग जाएगी। वह ऐसा महसूस करेगी जैसे अचानक फिर से सारी दुनिया रंगभरी और खुशनुमा हो गई है। बस तब रत्ना की सारी मुरादें पूरी हो जाएँगी और वह तब खुशी-खुशी मर सकती है। वर्ना, वर्ना बहुत कुछ अधूरा अतृप्त रह जाएगा!" पर उसके उस स्वयंवर के रचाव में एक भी वर उसे भला नहीं लगा। आने को अभी और भी जवाब आ सकते थे। इश्तहार दुबारा भी दिया जा सकता था। पर एक वितृष्णा से रत्ना ने तस्वीरों को परे धकेल दिया। "वॉट नानसेंस- ये क्या कर रही हूँ मैं।"

उसकी सारी जीवन योजना तो बेटे की ज़िंदगी की योजनाओं के ईद-गिर्द ही बनी थी? बीस में डाक्टर बन जाएगा। फिर दो साल रेज़ीडेंसी के बाद शादी करेगी उसकी। इस बीच वह अपनी बैंक की नौकरी करती रहेगी। जब उसे रेजीडेंसी ख़त्म करने के बाद ढंग की नौकरी मिल जाएगी तब वह भी बैंक से त्यागपत्र दे देगी। इस बीच पोते-पोती भी आ जाएँगे। तब बेटे के पास रहने चली जाएगी।

ये योजनाएँ माँ-बेटे ने साथ-साथ बनाई थी और सब कुछ योजना के अनुसार ही होता रहा था। बस एक ही जगह गड़बड़ हुई। गड़बड़ हुई तो सारी की सारी योजना ही खड्डे में पड़ गई! जो कुछ भी माँ-बेटा चाहें वह तो ज़रूरी नहीं कि है- क्योंकि शादी वाले पड़ाव के बाद से दो नहीं तीन की राय को म्यान में रखना वे दोनों भूल गए- बहू की भविष्य योजना में रत्ना की शरीकी नहीं थी- सो अब सारा मसला यहीं आकर खटाई में पड़ गया था। रत्ना पहले पति फिर हमेशा बच्चों के साथ ही रही। अब क्या करे? किसी के तो साथ रहना है? बेटियों के साथ रहना माँओं को मंजूर हो भी जाय तो जवाइयों को रास नहीं आता। फिर दस्तूर तो यही रहा है कि बेटे के पास रहेगी माँ। कहाँ गलती हे गई रत्ना से? क्या कमी कर दी उसने, किस तरह बड़ा किया कि आज बेटा इतना पराया हे गया। सास-बहू के रिश्तों के तनाव कोई नयी बात तो नहीं। सभी घरों में ऐसा होता है। पर इससे कोई माँ को घर में नहीं रखता? दूसरे रिश्तेदारों के यहाँ तो मिट्टी पलीद करवाने वाली ही बात है। यह तो कोई तरीका न हुआ रहने का?

सारी उम्र तो हारी नहीं थी। लड़ती रही हालात से। अब एकदम पस्त-सी हो रही है। लगता है जिसके लिए ज़िंदगी गुज़ार रही थी। अब उसकी ज़िंदगी का हिस्सा न होने पर सब कुछ नि:सार हो गया है, एकदम निरर्थक! और उस निरर्थकता में यह सार्थकता खोजी है रत्ना ने- एक दूसरे पुरुष का साथ! एक विद्रूप, एक भीषण अट्टहास फैल गया था उसके आसपास। अपने प्रति घृणा वितृष्णा से भरती जा रही थी वह। यही सूझा था, बस आ गई दूसरों की बातों में। जो व्रत उम्र भर का था उसे यों ही तोड़ने को तैयार हो गई। जब जवान थी तब तो शादी की नहीं। अब चली है अपना व्रत तोड़ने! खिल्ली का सामान बनने। क्या कोई आत्मसम्मान नहीं उसका? ऐसे लगा जैसे वह अपनी नीलामी कर रही है - एक लावारिस औरत हो गई है, किसी से कुछ लेना-देना नहीं। किसी से जवाबदेही नहीं। लावारिस औरत जो लाचारी में आवारापन पर तुल गई है।

क्या बदला लेना चाह रही थी सब से? तुम औरों के हो गए तो मैं भी किसी की हो जाऊँगी। बस यही तरीका रह गया है उसके पास? कोई अपना न रहा तो यह अपनी किस्मत सही, पर यह तो ज़रूरी नहीं कि अपनों की कमी को इस तरह पूरा करे वह।
यह सोच ही परेशान कर रही है रत्ना को कि कैसे कर पायी वह यह?

फिर एक अजीब सा ख़याल आया था-
क्या यह इश्तहार ही भेज दे सब को? या झूठमूठ का शादी का कार्ड?
फिर जैसे सचेत हुई, नहीं, कितनी नागवार बात होगी?
पता नही क्या पागलपन सा सवार हो रहा था रत्ना पर तू ने ऐसा क्यों, क्यों किया रत्ना- प्रताप कुमार की रूह को भी कितनी तकलीफ पहुँच रही होगी! ऐसी अवमानना- ऐसा अपमान!

अपने इकलौते कमरे के अपार्टमेंट में अचानक फफक-फफक कर रो रही थी रत्ना, अखबार की तस्वीरों की चिंदियाँ-चिंदियाँ किए जा रही थी। सिसकियों के बीच बड़बड़ाती जाती,"देखो सब - देखो मेरा हाल- देखते क्यों नहीं? किस्मत ने मुझे इस हद तक ला दिया, क्यों सब मौत की तरह खामोश हो गए है, किसी को मेरी ज़रूरत ही नहीं रही। "अपने इस हाल के लिए किसको दोष दूँ मैं, बता न? किसको? किस्मत को या खुद को?"
सारे कमरे में अखबार की चिंदियाँ फैली हुई थीं और रत्ना ज़मीन पर उनके बीच घुटने पर सिर टिकाए इस तरह बैठी हुई थी जैसे पहली बार विधवा हुई हो! पहली बार अपने पति की मौत का मातम मना रही हो!

(१६ जुलाई २००५ को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)

गुरुमाई

उस बड़े से हॉल के एक सिरे पर सिंहासन नुमा चौड़ी-सी आरामकुर्सी थी जिस पर लाल रंग का रेशमी कपड़ा बिछा था। कपड़े के किनारों पर सुनहरी धागों से कढ़ाई की हुई थी। सिंहासन के ठीक उपर छत्र था गुलाबी रंग का जहाँ दोनों ओर खड़े सफ़ेद कुरता पाजामा पहने दो युवक गुरुमाई पर पंखा झुला रहे थे। गुरुमाई बहुत शांत, निरुद्विग्न-सी बैठी थी अपने सिंहासन पर। आँखें ठीक सामने देख रही थी। कभी-कभी हाल में बैठे भक्तों की भीड़ पर नज़र दौड़ा लेती। फिर अपने आप में अवस्थित। जैसे कि ध्यान में ही हो!

हॉल में एकदम चुप्पी थी। सब इंतज़ार में थे गुरुमाई के आशीर्वाद के। उनके मुख से निकलनेवाला हर वाक्य आकाशवाणी की तरह पवित्र और पूज्य था। क्या गुरुमाई अपने वचन की इस ताकत से परिचित थी? शायद हाँ। शायद हाँ, शायद नहीं।

एक-एक करके लोग उसके पास जाते, कुछ चरणों को छू नमस्कार करते। कुछ साष्टांग प्रणाम की मुद्रा में चरणों पर शीश रख देते। गुरुमाई हाथ बढ़ाकर, कभी सिर या माथा छूकर आशीर्वाद देती और वे लौटकर अपनी जगह आ बैठ जाते। उनकी आँखे गुरुमाई के चेहरे को ताकती अघाती न थी। एक तेज़ था वहाँ। यों भी गुरुमाई का चेहरा खूबसूरत था।

बड़ी-बड़ी आँखें पतली नाक, गोल मक्खन-सा चिकना चेहरा, भरे-भरे गुलाबी गाल, रंग मोतिया के फूल-सा उजला और उस उजलेपन को और भी रेखांकित करती खुली, घनी, लंबी और गहरी काली केशराशि। शायद अब वही रूप इश्वरीय तेज़ बन कर भक्तों को दीखता था। ख़ासकर अब उसमें ध्यानभाव की गरिमा भी तो घुलमिल गई थी। चालीस-पैंतालीस की उम्र में भी जवान दीखती थी गुरुमाई। शरीर भरा हुआ ज़रूर था पर मोटी कहने में हिचकिचाएँगे आप। बस इतना मोटापा जो आपके व्यक्तित्व में गुरु-गंभीरता ले आए। उसका आत्मविश्वास देख कर मैं हैरान थी। क्या वह सचमुच अपने आपको इतनी गंभीरता से लेती है। मुझे इस सारे नाटक के बाद उससे अकेले मिलना ही था। मैं तो आई ही इसलिए थी। कल जब अमरनाथ जी ने कहा कि आपकी सखी राजीमा आई हुई है और कल यू.एन. के हाल में उनका आशीर्वचन है तो मैं हैरान हुई थी। मुझसे तो उसने कुछ संपर्क नहीं किया इस बारे में। एक बार बेटे के इलाज के लिए अमरीका आई थी तो मेरे पास ही ठहरी थी। इस बार सूचना तक नहीं।

अमरनाथ जी ने मेरे चेहरे का भाव पढ़ लिया होगा। आपकी सहेली होगी। अब तो वे गुरुमाई है। बहुत फालोविंग हैं उनके। चेलों ने ही बुलाया है। न्यूयार्क के इस हाल में भक्तों के बीच बैठी सोच रही हूँ कि यह लड़की मेरी सहेली थी। हज़ारों बार इसके आँसुओं को पोंछा है मैंने। सच! कितने कष्ट पाए हैं इसने। इसकी पीड़ाओं, इसके पति की ज़्यादतियों, उसकी कटूक्तियों और अवहेलनाओं की कैसे करीब से साक्षी रही हूँ मैं। आज वह मुझे दोस्त की तरह देखना नहीं चाहती। मुझसे एक दूरी बनाकर ही बैठे रहना

चाहती है जैसे कि मेरे साथ कोई पुरानी पहचान ही नहीं। अगर थी भी तो नाममात्र की। देखती क्यों नहीं मेरी ओर! सामने तो बैठी हूँ। ख़ैर लाईन ख़ासी लंबी है। शायद मैं दिख न पा रही होऊँ। यही तसल्ली का तरीका था। वर्ना भीतर कितना कुछ खदबदा रहा था।

मैं काफी देर इंतज़ार के बाद उसके पास जा पाई। मुझे कोई चरण वरण नहीं छूने थे उसके। मुस्कुराकर हॅलो कहा। वह बिना किसी तरह की मुस्कान लाए सीधी निर्विकार-सी दृष्टि किसी शून्य बिंदु पर टिकाए रही। शायद उसने मेरा हॅलो कहना सुना नहीं या फिर अनदेखा कर दिया। मैंने धीमे से उसे जल्दी-जल्दी करके कहा, "पहचाना मुझे? बतलाया तक नहीं कि अमरीका आ रहा है। तुझसे अलग से मिलना है। मिल सकेगी?"
उसने हैरानी से मेरी ओर देखा जैसे कोई नींद से जागता है। आँखें नीचे कर ली जैसे ध्यान कर रही हो। फिर मेरी ओर आँख उठाकर ऐसे देखा जैसे कोई आशीर्वचन देते हुए देखता है।

शांत भाव में ही हल्के से फुसफुसाई, "नौ बजे मेरे होटल के कमरे में आना। मेरा विश्राम का समय होता है।"
मन में दुविधा होती रही। यह तो सचमुच गुरुमाई की तरह ही मुझसे व्यवहार कर रही है। कहीं कोई पागलपन तो सँवार नहीं हो गया इस पर। क्या ठीक से पहचाना भी था मुझे! छह सात साल से तो मिले नहीं हम। क्या पता इस बीच कोई कायाकल्प ही हो गया हो! होटल वक्त से पहले ही पहुँच गई थी मैं पर उसके चेले चपाटों ने ४५ मिनट इंतज़ार करवाया मुझसे। फिर उसने सब चेलों को बाहर निकाल दिया और कमरे में बस हम दोनों ही थे।

वह काफी देर तक गुरुमाई का खोल चढ़ाए मुझसे बात करती रही। एक तरफ़ वह सहेलीपना भी दर्शा रही थी वहीं दूसरी ओर मुझे यह कन्विंस करने की कोशिश कर रही थी कि उसमें कुछ है जो मैं नहीं देख पा रही हूँ। मैंने कहा कि तू अपने को क्या सचमुच गुरुमाई मानने लग गई है। कहाँ है वह राजी। कहाँ है वह लड़की जो मुझसे घुलमिल कर अपने रोने रोती थी, पति को कोसती और मजबूरी के आँसू बहाते मेरे कंधे भिगो डालती थी।

मैं भूल भी कैसे सकती थी कि मैंने किस हालत से उसे गुज़रते देखा था। ओह! खूबसूरती एक अमीर पति तो दिलवा देती है पर एक बार घर की हो जाने के बाद अपेक्षाएँ और होने लगती है। यानि कि सबसे बड़ा सवाल घर का हो जाता है। यह नहीं कि घर की सिर्फ़ देखभाल की जाए बल्कि घर का ही बन कर रहना होता है यानि कि आप नौकरी करें तो मंज़ूर नहीं क्योंकि अमीर पति को आपकी साधारण नौकरी से यानि कि आपकी अपनी अभिव्यक्ति की ज़रूरत से तो कुछ फ़ायदा होनेवाला नहीं सो अंततः आपका सजधज कर पति के इंतज़ार में बैठा रहना, उसकी मनपसंद का पहनना, फिर शामों को पार्टियों में उसकी गुड़िया बनी दीखना, रातों को बिस्तर पर उसकी हसरतों की रुहानी जिस्मानी प्यास बुझानेवाला मनभावन खिलौना बन जाना, यही सब सुहाता है। जब पत्नी यही सब करने की आदी हो जाती है तो फिर उससे भी ऊब जाता है पति और इधर उधर आँख मारनी शुरू कर देता है। अब तक आप दो बच्चों की माँ बन चुकी है। घर से बँध चुकी है। पति को तो तफरीह के लिए कोई न कोई चाहिए ही।

राजी के भीतर भी अंगारे फूटते रहते थे। बच्चे बड़े हो रहे थे और छोटा बेटा भी तो सामान्य नहीं था। नर्सरी स्कूल भेजा तो स्कूलवालों ने बताया कि उसकी जगह मानसिक रुप से विकलांगों के स्कूल में है। उसी का इलाज करवाने ही तो घर से बाहर निकली थी। कई तरह के इलाज करवाए। यही सब भागदौड़ लगी रहती। पति ने तो कभी हिस्सेदारी नहीं बटाई इन कामों में। वह बेटे के साथ होती और पति व्यापार की दुनिया में। कभी विदेश कभी जाने कहाँ, किसके साथ। उसे तो उड़ती उड़ती बातों के परचे ही

मिलते। पति तो साफ़ नकार ही देता। वह मन मसोस कर खामोश हो जाती। कभी लड़ती तो खुद ही कुढ़ना पड़ता। अपना ही दिन बेस्वाद! ओह कितनी घुटन होती थी उसे अपने घर में।

वह बच्चों से फारिग होती और अपनी ओर ध्यान जाता तो निराशा और हीनता का ऐसा बगूला भीतर से उठता कि मन होता सारी बनी बनाई गृहस्थी को तहस-नहस कर दे। पर अब वह बात भी उसके बस में नहीं थी। बच्चे तो अपने ही जिस्म टुकड़े थे। उनसे कैसे मुँह मोड़ती।

कुछ न कुछ उसे दायित्वों के बंधन में कसे रहता। छोटे-बड़े का इलाज। मानसिक रूप से विकलांग बेटे की ज़िम्मेदारी से कभी मुक्त नहीं हो पाएगी। वह बड़ा भी होता रहे पर उसका मानसिक विकास तो छोटी उम्र के बच्चे तक ही रुक जाएगा। कभी बड़ा होगा ही नहीं। माँ को दायित्वों से कब फ़ुरसत मिलेगी? पति की तो उसे पालने में कोई भागीदारी है भी नहीं। पर वह कहता है कि वह पैसा जो कमा लाता है। गृहस्थी का खर्चा तो उसी के ज़िम्मे है न। उसकी ज़िम्मेदारी तो उतनी ही है न।

राजी की परेशानियों से हमदर्दी थी मेरी। पर मैं तो अमरीका चली आई थी जब जाती तभी पता लगता कि बेचारी बेटे की परवरिश और घर की ज़िम्मेदारी में किस तरह लिबड़ी हुई है। वह कहती रहती है कि मैं कुछ करना चाहती हूँ पर यह मुझे कुछ करने ही नहीं देता। बाहर जाऊँ तो एक्स्प्लेनेशन माँगता है। जाना भी कहाँ होता है। कभी उसे स्कूल लेकर जाती हूँ या डॉक्टरों के पास। मेरी अपनी ज़िंदगी तो खत्म ही हो गई है। मुझे लगा कि वह खुद मानसिक रूप से रोगी हो रही थी जिसे अपने इलाज की ज़रूरत थी।

लगा कि सचमुच उसके चेहरे का खोल उतर गया। अब तू तो जानती ही है... और कहते हुए अचानक मुझे लगा कि उसकी आँखें गीली हो आईं। मुझे लगा कि अभी जैसे आँसू उसके गले में ही अटके हों। पर बहुत जल्द ही सँभाल लिया उसने खुद को। वह खूब प्यार से मुझे गले मिली।
मुझे कहना ही था- यह सब क्या है यार?

वह सहसा बहुत गंभीरर हो गई। बोली, "यह सब जो तू देख रही है न, यही मेरा सच है। आज का सच जिसे मैं खुद नहीं जानती थी। देख वह सब मेरा पास्ट था। अब नहीं है। सच, मेरे हाथ में कुछ है। लोगों की तकलीफ़ दूर हो जाती है। मेरी इन्ट्यून बहुत स्ट्रांग है, व्यक्ति को देखते ही पता चल जाता है कि उसकी क्या तकलीफ़ है। तभी तो इतने लोग आते हैं। सब ऐसे ही एक दूसरे से सुनकर ही तो। मैं कोई विज्ञापन तो नहीं छपवाती।

वह बोलती रही, "यों मैं बहुत देर तक अपनी इस ताक़त से अनजान रही। फिर संदिग्ध, और अंततः आश्वस्त! बस ऐसी आश्वस्त कि मुझे लगने लगा कि अपने आप ही, बिना किसी आयास के मेरे मुख से अलौकिक वचन ही निकलते हैं। अगर पता होता तो बहुत पहले ही लोगों का भला शुरू कर देती। यह सब तो होते होते ही हुआ। अब तो लगता है कि बहुत लोगों का मेरे हाथों भला होना है। मुझे लगा कि वचन बोलते-बोलते ही वह भीतर से कहीं खाली हो गई है। जैसे भीतर कभी कुछ था ही नहीं। उसके चेहरे पर उभरने लगे थे फिर से वही घाव, दर्द, चोट, थकान और ऊब!

पर वह मेरी ओर मुखातिब हो कर कह रही थी- देख अपना ध्यान रखना। तेरे चेहरे से मुझे लग रहा है कि तेरी सेहत खराब होगी। कल दिन में आना तो मैं तेरी हीलिंग कर दूँगी। फिर बची रहेगी किसी बड़े अटैक से।

यों तो तब मैं भारत में ही थी जब उसने प्राणिक हीलिंग सीखनी शुरू की थी। मैंने इसे ज़्यादा कुछ माना नहीं था। मुझे लगता कि बेचारी दुखी है। कोई न कोई शीशा तो चाहिए ही। राजी ने ही तब मुझे बतलाया था कि उसकी सहेली, उसके जैसी ही एक अभिशप्त माँ ले गई थी प्राणिक हीलिंग के लिए। फिर जापानी रेखी सीखी। पूरा कोर्स किया। अपने आप को हील करती। तकलीफ़ कम होती। मन को बहुत सुकून मिलता। ऐसे ही एक बार उसकी सहेली ने सख्त सिरदर्द की शिकायत की तो राजी ने अपनी नई सीखी विद्या के इस्तेमाल से उसे ठीक कर दिया। फिर तो सभी सहेलियाँ, सहेलियों की सहेलियाँ, उनके परिवार के सदस्य राजी की राय लेते, इलाज करवाते।

मैं उसकी बात पर हँस नहीं सकी। वह सचमुच बदल चुकी थी। वह अपने बारे में इतनी गंभीर थी कि मेरा उसे पुरानी दोस्ती की ज़मीन पर लाना असंभव दीख रहा था। यों वह अपनी पूरी दोस्ती जता रही थी। स्नेह भरी बातें कर रही थी। अकेले में मिलने का मौका इसी बूते ही तो दिया था। पर फिर भी एक बात के लिए खुद को रोक नहीं पाई। पुरानी दोस्ती और आत्मीयता के नाम पर ही...तेरे मियाँ को कोई ऑबजेक्शन नहीं कि तू इस तरह अकेली घूमती है। अब वह इजाज़त दे देता है। उसके चेहरे पर ढेर सारी मुस्कुराहट बिखर गई, लगभग हँस ही पड़ी वह। उसका तो काया पलट हो गया है। एकदम। नाम हो गया है न मेरा तो उसको भी ज़्यादा लोग पूछते हैं अब। उसको तो आराम से क्लायंट्स मिल जाते हैं अब। उसका जिस किसी से काम होता है उसे इलाज का लालच देकर फाँसता है। मैं तो ख़ैर सभी का इलाज करती ही हूँ पर यह बड़ा अहसान जताकर लाता है उनको मेरे पास ताकि उसका काम बनता रहे। आइ डोंट केयर फॉर हिम। बहुत मीन आदमी है वह। हर जगह अपने बिज़नेस का मतलब ही रहता है उसे। मुझे अपनी अलग गाड़ी, ड्राइवर और अलाउंस दिया हुआ है ताकि अपनी सहूलियत से आ जा सकूँ। पर उससे क्या! माई नीड्स आर मेट एनीवे। कोई ज़माना था कि खुद तो ऐश करता था और मुझे घर से बाँधकर रखा था। अब मैंने बोल दिया है जब मैं बाहर रहूँ तो छोटे का ख़याल उसी को रखना होगा। वैसे तो अब वह काफी आत्मनिर्भर हो गया है फिर भी ध्यान रखना होता ही है न। पुअर चाईल्ड! ही विल ऑलवेज़ नीड सम सुपरविजन। अब तो उसकी छोटू से दोस्ती सी हो गई है। पहले तो कभी बाप का धर्म निभाया ही नहीं था।

मैं भी मुस्कुरा पड़ी थी। मन को बड़ी तसल्ली-सी हुई। हाँ तो अब उसके भक्त उसके पति के क्लायंट्स बन गए हैं। या कहिए कि पत्नी किसी न किसी तरह सबको संतुष्ट तो कर ही देती है। पति खुश और पासा पलट गया है। अब वह रौब से रहती है।

वह बहुत तेज़ लड़की थी। बहुत होनहार। कॉलेज में हम साथ ही तो थे। पर वही कि बी.ए. मुश्किल से पास नहीं की कि माँबाप ने शादी कर दी। पति अमीर तो खूब था पर देखने में घोंचू। ऊपर से सुंदर पत्नी पाकर हीनताग्रंथि का ही शिकार बना रहता। परिणाम यह कि राजी को इस तरह कसकर रखता कि बेचारी साँस लेने को तरस जाती। जहाँ जाना होता साथ ही ले जाता, न तो नौकरी करने देता।

वही राजी इलाज करने के नाम पर अब कहीं भी जा सकती थी। दूसरे शहरों में, दूसरे देशों में। कभी सिंगापुर तो कभी लंदन। कभी न्यूयार्क तो कभी कैनेडा। किसी से भी मिल सकती थी। अब पुरुषों से भी मित्रता स्वीकार थी पति को। क्योकि उसे भी तो लाभ ही था। इन पुरुषों से उसके भी काम निकलते थे और बिना अहसान में दबे। यों भी वह सोचता कि सारे मर्द अब उसकी पत्नी को माँ की तरह पूजते हैं।

हाँ चाहे उनका मुखौटा गुरु भक्त का ही रहता। मज़ेदार बात तो यह है कि बहुत से पुरुष राजी को अपनी प्रेम भावना भी जता गए हैं। बार-बार आ जाते हैं। वह भी भक्ति के रूप में प्रेम स्वीकार लेती है। मुझसे बोली इसी को तुम्हारे साहित्य में रहस्यवाद कहते हैं न। बुलाते तो सब माँ ही है न उसे। अब कोई भक्त आकर कहे कि सारी रात सो न

सका। आपका चेहरा ही आँखों पर छाया रहा तो राजी क्या उसे डॉट लगाएगी! उसके भीतर की औरत, माँ, भगिनी सभी एकदम तृप्त है। क्या खूब है राजी! मैंने मन ही मन उसको दाद दी! कहाँ तो पति के मन में तनिक भी इज़्ज़त नहीं थी। न तो राजी के लिए न राजी के परिवार के लिए। राजी भी जानती थी कि अपने मायके लौटना उसके परेशानियों, मुसीबतों का हल नहीं है। तो इससे अच्छा हल और क्या हो सकता था कि साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे।

मैं सोच रही थी कि क्या यही उसका उसके पति से प्रतिरोध है? क्या ले पाई है वह उस सारे अनाचार का बदला। लोगों से घिरी यह गुरुमाई कहाँ घर की चहारदीवारी में अकेली सड़ती थी, अब पति भी इसका भक्त हो गया है। पति का फैलता हुआ व्यापार भी अब राजी के कंधों पर। क्या यही है राजी का बदला?

उसने मेरे चेहरे की ओर ग़ौर से देखते हुए आवाज़ में बहुत संजीदगी लाकर कहा, "सुन मैं देख रही हूँ कि अगले तीन साल में तेरे साथ कुछ दुर्घटना होनेवाली है। तुझे मंत्र दूँगी। यहाँ आई हुई हूँ मैं तो कर दूँगी तेरा भी काम। फिर उसने किसी मशहूर अभिनेता का नाम ले बतलाया कि उसकी भी आसन्न आपत्ति को उसके चेहरे से ही बतला पाई थी। तब बेचारे को बचाने का उपक्रम भी किया। वह तो इतना मानता है न अब मुझे कि फ़िल्म इंडस्ट्री का कोई न कोई आता ही रहता है हमारे पास।

यानि कि वह मुझे भी यही विश्वास दिलाने की कोशिश कर रही थी कि जो कुछ मैं देख रही हूँ वह ढोंग नहीं, सच है। वह सच में विशेष शक्तियों की मालिक है। खाली उसको पहले पता नहीं था। लेकिन अब पता है। वाह खूब! कहीं उसे यह डर तो नहीं कि मैं उसकी पुरानी सहेली होने के नाते यह ढिंढोरा पीट दूँगी कि यह तो आम औरत है, अपने पति की सताई जो अपने बेटे के इलाज के लिए इधर-उधर भटकती रहती है। इतनी ही शक्तियाँ हैं तो बेटे का ही इलाज क्यों नहीं कर लेती। पर न तो मैं ऐसा कुछ कह सकी न ही उसका चेहरा देख मेरी हिम्मत ही हुई कि उसे सुनने को तैयार कर सकूँ। जो मोहजाल, जो संसार उसने अपने इर्दगिर्द गढ़ा था, उससे उसे बाहर निकालने में मैं आखिर किसका भला कर रही थी? मैंने सिर्फ़ खुद को ही समझाया...
तो यह सब एक खिलवाड़ नहीं है... राजी बेहद सीरियस है।
मैं उसका चेहरा पढ़ने की कोशिश करती रही। लेकिन कुछ स्पष्ट नहीं हुआ।
बस सोचती रही कि क्या यह उसका पति से प्रतिशोध या... या एक और रणनीति। ऐसी रणनीति जो कभी अचूक नहीं होती!

(१८ मई २००९ को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)

तीसरी दुनिया का मसीहा

जो ब्रूनो ने बात कहते-कहते स्टीयरिंग से हाथ उठा लिए और सही लफ़्ज़ों की तलाश की जद्दोजहद में हाथों की संप्रेषण शक्ति की पूरा इस्तेमाल करते हुए पूरे जोशोख़रोश के साथ अपनी बात खोलने लगा।

"-- इस देश में आदमी का जिस्म भी एक इंडस्ट्री है... सारे डॉक्टर उसी की कमाई खाते हैं... कोई न कोई बीमारी उगाकर पैसा बनाने की फ़िराक़ में रहते हैं। इन डॉक्टों में कोई इंसानी हमदर्दी थोड़े न है... जितनी बड़ी आपकी बीमारी हो उतना ही खुशी से वे फूलते-फैलते हैं। आप तो दर्द से कराह रहे होते हैं और वह आपकी नब्ज़ पर हाथ रखे कोई बेहतर नई गाड़ी या बड़े से बड़ा घर ख़रीदने की सोच रहा होता है..."

पहले सहायक भाषा के रूप में उसका एक हाथ ही उठता रहा था... पर अब बार-बार दोनों हाथ स्टीयरिंग से उठ जाते। यों गाड़ी की रफ़्तार बहुत धीमी थी फिर भी मैं जो ब्रूनो के कभी हवा में झूलते और कभी कार की छते या स्टीयरिंग से टकराते हाथों पर नज़र ऊपर-नीचे, दायें-बायें करती बहुत नर्वस हो रही थी। शायद उसने मेरी बेआरामी भाँप ली होगी क्योंकि उसने गाड़ी किनारे करके रोक ही ली और बात जारी रखी।

"--उनके लिए तो तुम्हारा शरीर एक बिगड़ी हुई मशीन है। एक पुर्ज़ा ठीक लगा देंगे तो दस पेंच और ढीले कर देंगे। एक बार जब आपने आदमी के ढाँचे को ही इंडस्ट्री मान लिया तो फिर बचा क्या? ... जिस आदमी के इर्द-गिर्द सारा संसार रचा गया है जब वही केंद्र से हट गया तो पूँजी को केंद्र में लाकर बनेगा भी क्या-- एक डैड प्लैनेट। पर यह सीधी-सी बात इसे पूँजीवादी देश में किसी के पल्ले पड़ती नहीं, सब अपनी-अपनी पूँजी बनाने के चक्कर में घूम रहे हैं।"

उसी दिन सुबह अखबार में ख़बर निकली थी कि एक लगभग मृत पचासी साल के बूढ़े को हस्पताल में एक नर्स ने ऑक्सीजन वगैरह लगाकर पुनर्जीवित कर दिया। ज़िंदा होने के बाद, ऑक्सीजन के कुछ देर तक पूरी तरह रुके रहने की वजह से उस आदमी के जिस्म का एक भाग लकवा मार गचा था। अब उसने हस्पताल वालों पर मुक़दमा दायर कर दिया था कि उन्होंने उसे क्यों जीवनदान दिया क्योंकि अब एक तो उसे अपंग होकर जीना पड़ रहा है, दूसरे उसके पास अस्पताल की फीस चुकाने के लिए भी पैसा नहीं है। जो ब्रूनो ने अपनी बात इसी सिलसिले में शुरू की थी।

जो ब्रूनो एक साथ चाँद और अणु-अस्त्रों की भट्टी में इंसान को भेजने वालों की इस नई दुनिया का होकर भी नहीं था। बीस-बाईस साल पहले वह दक्षिण इटली से यहाँ आया था। तब उसकी नई-नई शादी हुई थी, बहुत कम उम्र थी उसकी, क़रीब उन्नीस बीस रही होगी। उसके अनुसार उसकी बीवी के बहुत ज़ोर देने पर वे यहाँ आए थे। मेरी ही तरह वह भी अपने देश में पल-बढ़ कर यहाँ आया था। इसलिए पूरा अमरीकी नहीं बन सका। उसकी ज़ुबान में भी इटैलियन भाषा का बहाव और पुट था। फिर भी इतना हिम्मती था कि स्टॉक्स (सट्टा बाज़ारी) में पैसा कमाकर उसने "तीसरी दुनिया" शीर्षक से अपना एक केबल चैनल पर टेलीविजन प्रोग्राम शुरू कर रखा था। इस प्रोग्राम में वह विद्वान

प्रोफ़ेसरों और अपने विषय के विशेषज्ञों को बुलाकर तीसरी दुनिया के देशों की धर्म, राजनीति, आर्थिक-सामाजिक स्थिति और समस्याओं पर बहस के कार्यक्रम पेश करता था। यों मुझे नहीं मालूम कितने लोग इस केबल चैनल पर आनेवाले प्रोग्राम को देखते थे (केबल चैनल का क्षेत्र सीमित होता है), पर वह बड़ी निष्ठा से हर हफ़्ते यह प्रोग्राम पेश करता। अपने स्टॉक्स बेचने के काम में उसे क़तई दिलचस्पी नहीं थी। कहता था कि उसे वहाँ बेचने के लिए झूठ बोलना पड़ता है इसलिए वह यह काम जल्द ही छोड़ देगा।

मेरी उससे मुलाक़ात उसके 'तीसरी दुनिया' प्रोग्राम के सिलसिले में ही हुई थी। हिंदुस्तानी औरतों के हालात पर बहस करने के लिए उसने मेरा भी इंटरव्यू लिया था। मैं इस विषय में कोई विशेषज्ञ तो नहीं थी, लेकिन एक भुक्त-भोगी-पुरुष के अत्याचारों की शिकार नारी की हैसियत से मुझसे बातचीत की गई थी। ब्रूनो के ख़्याल में सभी एशियायी औरतें अपने पुरुषों द्वारा दबाई हुई है और उनके द्वारा किए अनर्थ और अत्याचारों को खामोश रह कर सहती है इसलिए उसके इस प्रोग्राम के लिए कोई भी हिंदुस्तानी औरत चली जाती। उसने हिंदुस्तान जाकर दलितों और गरीबों पर एक लंबी फ़िल्म भी बनाई थी लेकिन किसी भी टी.वी. स्टेशन ने अभी तक उसकी फ़िल्म ख़रीदी नहीं थी। अपने केबल चैनल पर तो वह उसे दिखला चुका था पर जितना ख़र्चा फ़िल्म बनाने में हुआ था उसकी पूर्ति कैसे होती। उसका अपना चैनल तो विज्ञापन-विहीन था। वह गुस्से में आकर अमरीका को और भी गाली देता।

"-- या तो फ़ैशन राज करता है इस देश में, या राजनीति। हिंदुस्तान आजकल फ़ैशन में नहीं, रूस और कोरिया है...उन्हीं से राजनैतिक कार्य-कलाप चलता है... उन्हीं पर बनी फ़िल्में दिखाई जाएँगी। आपने फ़ैशनेबल चीज़ नहीं बनाई तो यू आर आउट ऑफ सरकुलेशन! इंसानियत का तो नामोनिशान नहीं जबकि उसी का ढोल पीट-पीट कर ये सारी दुनिया को उल्लू बनाने की ताक़ में रहते हैं।"

कभी-कभी मुझे लगता कि मुझमें भी उसकी रुचि तीसरी दुनिया के एक नुमाइंदे के रूप में ही ज़्यादा थी- नुमाइंदा भी तो अव्वल दर्जे का थी मैं- एक तो औरत दूसरा दुःख की मारी। मेरी हालत किसी भी संवेदनशील इंसान में हमदर्दी जगा ही देती! नहीं दहेज की वजह से जल मरने की नौबत तो नहीं आई थी जैसा कि जो ब्रूनो ने सोचना चाहा था।

उलटे किसी ने मसीहा बनकर बिना दहेज के शादी कर मेरे निम्नमध्यवर्गीय परिवार का उद्धार किया था। लेकिन अमरिका में लाकर उसने मुझे फ्लशिंग की एक गली के इस अपार्टमेंट में सिर्फ़ एक घर की देखभाल करने वाली पत्नी या ज़्यादा सीधे शब्दों में नौकरानी से बढ़कर दर्जा नहीं दिया था। उनकी प्रेमपात्रा सिर्फ़ प्रेमिका ही बनी रहना चाहती थी। कैरियर वुमन... शादी और बच्चों में पड़कर अपना संसार उलट-सुलट नहीं कर सकती थी। - तो उन्हीं सब कामों के लिए मेरी ज़रूरत आ पड़ी थी। लेकिन लगता है खुदा ने मेरे भीतर की आह को भी ज़रूर सुन लिया होगा... क्योंकि लाख कोशिश करने के बावजूद मैं गर्भवती नहीं हो सकी। बाँझ होना मेरे लिए कहीं वरदान ही बना। क्योंकि मैं भी इस घर की भोगते हुए कहीं उसके अपेक्षित दायित्वों से मुक्त थी।

ब्रूनो मुझे प्यार करता है... अगर मैं अपने पति कहलाए जानेवाले पुरुष से तलाक ले लूँ तो मुझसे शादी करेगा- ऐसा बार-बार कहा है उसने। मैं कहीं अपने भीतर यह हिम्मत जुटा रही हूँ कि अपने उस दूसरी स्त्री के प्रेमी पति से कह सकूँ कि जितना बेजान और बेचारा मुझे समझा हुआ है उतनी नहीं हूँ मैं। यों तलाक़ के नाम से मेरे खून के कतरे तक काँप उठते हैं... समाज के डरों को चाहे पल भर टाल भी दूँ... पर अपने आप से ही इतना डर लगने लगता है... पता नहीं कितनी तरह के खौफ़...।

अपने हिंदुस्तानी पति को छोड़कर किसी दूसरी जाति के इंसान पर भरोसा करना ही अपने आप में बड़ी खौफ़नाक बात लगती है... कितनी-कितनी अनजान डरावनी स्थितियाँ मेरे ख़यालों में से पैदा होती रहती हैं... फिर जब जो ब्रूनो साथ होता है तो सारे डरों की बात सोचकर मैं खुद में बहुत छोटा महसूस करने लगती हूँ... जो ब्रूनो की इंसानियत की कोई जाति नहीं थी... जितना हिंदुस्तान या हिंदुस्तानियों को प्यार और इज़्ज़त वह देता था उतना मेरा हिंदुस्तानी पति भी कतई नहीं दे सकता था। और महसूस करने लगती हूँ... जो ब्रूनो की इंसानियत की कोई जाति नहीं थी... जितना हिंदुस्तान या हिंदुस्तानियों को प्यार और इज़्ज़त वह देता था उतना मेरा हिंदुस्तानी पति भी क़तई नहीं दे सकता था। और इस तरह जब मन ठिकाने पर होता तो इच्छा होती कि अपने पति से कह डालूँ, "लो सँभालो अपना घर (बार यानि कि बाहर मेरे पास था ही नहीं, सिर्फ़ घर था)- यह नौकरीनी तुम्हें तलाक़ देती है। मसीहा रहे होंगे तुम मेरे माँ बाप के लिए। मेरे लिए तो किसी शैतान से भी बदतर हो।"

शायद छुपे रूप में वह कहीं मेरे लिए मसीहा भी रहा होगा... मुझे अमेरीका न लाया होता तो शायद अपनी शख़्सियत का इतनी जल्दी अहसास न हुआ होता। न ही मैं मिल पाती अपने इस नए मसीहा - जो ब्रूनो को।

ब्रूनो से मैंने कहा था कि ज्यों ही मैं ये इम्तहान पास कर लूँगी और मेरी नौकरी लग जाएगी तो हम दोनों साथ रहने लगेंगे और फिर शादी कर लेंगे। बिना नौकरी के मैं तलाक़ नहीं लेना चाहती थी। दरअसल मेरे इस अर्थहीन वैवाहिक-जीवन के मूल में भी यही एक छेद था कि पैसा न होने की वजह से ही एक तो मेरे माँ-बाप ने मुझे किसी दूसरे के हवाले करने की जल्दबाज़ी की, दूसरे यहाँ आकर चूँकि मैं खुद कमाने के क़ाबिल नहीं हुई थी इसलिए दूसरे की शर्तों पर ज़िंदगी ढोने को मजबूर हो गई थी। अब धीरे-धीरे बच्चों की देखभाल के केंद्रों में अस्थायी सब्सीट्यूट की नौकरी करके इतना अनुभव हो गया था कि कुछ पढ़ाई करके स्कूल टीचर बन सकूँ। एक बार बस पक्की नौकरी लग जाए तो किसी भी पुरुष को चुनौती दे सकूँगी।

लेकिन जो ब्रूनो को मैं कोई चुनौती नहीं देना चाहती। न ही उसके लिए कोई चुनौती बनना चाहती हूँ। उसे तो मैं प्यार करती हूँ... एक बहुत सहज आपसी प्यार का रिश्ता... बस यही चाहती हूँ। उसे मैं अपने अन्नदाता या भरण-पोषण करने वाले पुरुष के रूप में भी नहीं देखती जैसा कि अपने पिता या पति को अब तक देखती रही हूँ। वह इस क़िस्म का है भी नहीं जिस पर पूरी तरह से ऐसा भार डाला जा सके। वह तो बड़ा सैलानी किस्म का आदमी है। कभी हिंदुस्तान भाग जाता है तो कभी नेपाल या तिब्बत, तो कभी दक्षिण अमरीका। हमेशा किसी खोज में। प्राचीनता और पुरानी संस्कृतियों से उसे ख़ास मोह है... इसीलिए हिंदू धर्म और संस्कृति की भी उसके मन में ख़ास इज़्ज़त है। वह मुझे भी कहा करता है, "तुम को तो अंदाज़ा ही नहीं, तुम बहुत ख़ास लोग हो।... मैं चाहता हूँ कि हिंदुस्तान की पुरानी महत्त्वपूर्ण संस्कृति और वहाँ की आज की ग़रीबी की तस्वीरें दिखाकर संसार का ध्यान उधर दिलाऊँ... वर्तमान हिंदुस्तान की तरक्की के लिए अमरीका का अमीर आदमी तभी पैसा लगाएगा जब उसमें यहाँ के आदमी की रुचि होगी और यहाँ के आदमी को आकर्षित करने का एक ही तरीका है- उन्हें हिंदुस्तान की रंग-बिरंगी, मोहक प्राचीन यानि क्लासिकल संस्कृति दिखाई जाए।" अपने 'तीसरी दुनिया' कार्यक्रम द्वारा वह विश्वशांति और विश्वबंधुत्व जैसी भावनाओं को स्थापित करने की कोशिश किया करता था।

उसे खुद पैसे के लिए पैसा कमाने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। जब तब कुछ पैसा कमाकर वह घूमने निकल जाता था। लेकिन जहाँ भी जाता मुझे ख़त या कार्ड भेजना नहीं भूलता था। वह कहता, "मैं जहाँ भी रहूँ तुम्हारी कमी महसूसता रहता हूँ। मैं न्यूयार्क लौटता हूँ तो सिर्फ़ तुम्हारे लिए...वर्ना कुछ नहीं रखा अमरीका में... बड़े निर्दयी लोग बसते हैं वहाँ।"

उसे अमरीकी लड़कियाँ भी पसंद नहीं। मुझे प्यार करते हुए वह कह डालता है,
"तुम्हें मालूम है तुम यहाँ की लड़कियों से बहुत फ़र्क हो... बहुत नर्म, बहुत प्यारी, बहुत मीठी। मैं कभी अमरीकी लड़कियों के साथ डेट नहीं करता अब। बड़ी ज़ालिम, बेहया और सख़्त किस्म की होती हैं वे। फ़ैमिनिज़्म ने कबाड़ा कर डाला है इन लड़कियों का।"

उसके आगोश में मैं बहुत नरम-सी कली-सा महसूस करती जिसे बड़ी एहतियात से चूमा जाता है कि कहीं हल्के से दबाव से भी मसल न जाए। जबकि मैं बुरी तरह से झकझोरे और मसले जाने के बावजूद भी किसी की हवस बुझाने के लिए तैयार रहने की आदी रही हूँ। वह मेरे जिस्म के हर हिस्से को चूम-चूमकर जब उसे खूबसूरत बयान करता है तो मुझे लगने लगता है कि मैं पहली बार जवान हुई हूँ। वह मुझसे हर बार प्यार करने की इजाज़त - मेरी रज़ा माँगता है। दरअसल वह मुझे बड़ी गंभीरता से लेता है- मेरी 'न' को 'न' और 'हाँ' को 'हाँ' ही समझता है। यों आज तक मुझे मेरे माँ-बाप या ससुराल घर में किसी ने भी गंभीरता से नहीं लिया- यहाँ तक कि मैंने खुद अपने आप को कभी गंभीरता से नहीं लिया था इसलिए मेरी न या हाँ का कुछ परिणाम नहीं निकलता था। लेकिन अब उस न या हाँ के परिणामों का पूरा दायित्व मुझ पर था। इसीलिए अपने को लेकर अब मैं गंभीर होती जा रही थी।

फिर भी मुझे यह अजीब लगता कि सिर्फ़ हिंदुस्तानी होने भर से ही वह मुझे अच्छी लड़की की कैटेगिरी में डाल देता। वह अकसर कहता भी- 'तनु, तुम हिंदुस्तानी नारियाँ सच्ची नारियाँ हो। यहाँ की औरतों ने तो अपना नारीत्व ही खो दिया है। उन्हें प्यार करने में भी डर लगता है। पता नहीं कब कौन-सा सिद्धांत छाँटने लगें। प्यार की नाज़ुकी को तो वे कुछ समझती ही नहीं। समानता-स्वतंत्रता के नारों को भोंक कर सब कुछ तहस-नहस कर देती हैं।"

तब मैं उससे खूब औरताना बातें करनी लगती। 'क्या तुम बहुत-सी अमरीकी लड़कियों से मिलते रहते हो?'
'अब नहीं। अब तो सिर्फ़ तुम ही हो मेरी ज़िंदगी में और रहोगी भी।'
उसने मुझे बताया हुआ था कि वह तलाक़शुदा है।
'क्या तुम्हारी पत्नी भी अमरीकी थी?'
'आधी अमरीकी, आधी जर्मन। सबसे ख़राब मिश्रण। तभी हमारी पटी नहीं।'
'क्या कोई संतान है?'
'नहीं।'
और वह झट से बात बदल देता है।

'मैं तुम्हें ढेर सारा प्यार देना चाहता हूँ... तुम्हारे हर दर्द को हर लेना चाहता हूँ... हम दोनों साथ-साथ सिर्फ़ प्यार और समानता की ज़मीन पर टिकी ज़िंदगी जियेंगे... और वह हँसकर जोड़ देता है कि उसके साथ न मुझे दहेज की समस्या होगी, न सास-ससुर के साथ निबाहने की, न घर की नौकरानी बनने की और न ज़बरदस्ती अपने शरीर को किसी के हवाले करने की... बस साथ-साथ सबकुछ शेयर करते हुए... एक सही ज़िंदगी जियेंगे।

कितना खूबसूरत लगता है ज़िंदगी का ऐसा नक्शा। जो ब्रूनो सच में कोई मसीहा बनकर आया था मेरी ज़िंदगी में।

उन्हीं दिनों मुझे केंद्र में किसी ने शहर में आए एक स्वामी विराटानंद के बारे में बताया था। बड़े पहुँचे हुए गुरु हैं, सब बीमारियाँ ठीक कर देते हैं, भविष्य-भूत एकदम सही बतला देते हैं। मुझमें भी कौतूहल था। मैंने जो ब्रूनो से कहा, "चलो इन स्वामी जी से मिलते हैं। तुम यों भी मुझसे हिंदू धर्म और दर्शन के सवाल पूछते रहते हो, स्वामी जी सारे जवाब सही सही दे सकेंगे।

स्वामी जी का व्यक्तित्व सच में बहुत प्रभावशाली था। जो ब्रूनो पर तो ऐसा असर हुआ था मानो किसी ने हिप्नोटाइज़ कर दिया हो।
- 'बहुत पहुँचा हुआ आदमी लगता है वह। मुझे पहली बार ज़िंदगी में किसी ने सही तौर पर बताया है कि क्यों मेरी ज़िंदगी इतनी नाकामयाब रही... क्यों इतने ग़लत फ़ैसले हुए हैं मुझसे...
अचानक मैंने ग़ौर किया कि उसके चेहरे पर छाया रहनेवाला सहज उल्लास और रोशनी नदारद थे। उनकी जगह मैं उसकी आँखों में देख रही थी- संदेह, कन्फ्यूज़न, डर।
- 'लेकिन ग़लत और नाकामयाब क्योंकर मानने लगे तुम अपने-आप को?
उसने एक लंबी साँस ली।
- 'और क्या! सब कुछ ही ग़लत हुआ है मेरी ज़िंदगी में- शादी की तो ग़लत लड़की से। पढ़ाई की तो इंजीनियरिंग जिसमें मेरी कतई दिलचस्पी नहीं थी। नौकरी की तो स्टॉक ब्रोकर की जो कभी भी मेरे स्वभाव के अनुकूल नहीं थी। फिल्म भी बनाई तो ऐसी कि जिसे कोई खरीदता नहीं। जो मैं बनना चाहता था कभी नहीं बन सका... सब कुछ इतना ग़लत, इतना उलझा हुआ है। उसके चेहरे पर उदासी और आत्मदया बढ़ी हुई थी। मैंने आज तक उसका सिर्फ़ समर्थ रूप ही देखा था। इस तरह देखकर धक्का लगा।
शायद स्वामी जी से मिलकर वह अपने आप को छोटा महसूस करने लगा था- ऐसा मैंने सोचा। ऐसा शायद सभी को लगता है... ख़ासकर किसी को जब इतने ऊँचे पद पर बैठा दिया जाए, उसे भगवान के क़रीब मान लिया जाए... लेकिन मैंने अपना आपा नहीं खोया था। स्वामी जी की सिर्फ़ एक बात ने मुझे चौंका दिया था- "मेरे जीवन में बड़ा भारी परिवर्तन होगा।' एक तरह से अच्छा ही लगा था... जो ब्रूनो के साथ विवाह का सोचकर गुदगुदाता रहा मन... और क्या परिवर्तन संभव था?

स्वामी जी ने ब्रूनो को दुबारा आने के लिए कहा था। मुझे नहीं बुलाया था सो मैं नहीं गई। फिर ब्रूनो बार-बार उनके पास जाने लगा था। एक दिन जो ब्रूनो का फ़ोन आया तो वह बहुत परेशान था। हमेशा की तरह उस दिन भी लंच के लिए हम एक छोटे से चाईनीज़ रेस्तराँ पर मिले तो मुझे उसके चेहरे पर अनगिनत रेखाएँ उभरी दिखीं।
- 'तुम इतना परेशान क्यों हो जो?' उसने मेरी आँखों में सीधे झाँकते जैसे कुछ पढ़ने की कोशिश कर कहा, 'तुम्हें मैंने अपने बारे में एक बात नहीं बताई थी, शायद डर था कि तुम्हें खो दूँगा। अब बताना चाहता हूँ।'

मैं डर-सी गई। पता नहीं क्यों मैं बहुत जल्दी डर जाती हूँ। जब भी कोई बात कहने से पहले भूमिका बाँधने लगता है मैं डर से पहले ही अधमरी हो जाती हूँ। मेरे माँ-बाप ने ऐसी ही भूमिका बाँधकर मेरी शादी की घोषणा की थी, मेरे पति ने ऐसे ही भूमिका बाँधकर दूसरी स्त्री से अपने प्रेम की चर्चा की। ब्रूनो अब क्या कहने वाला है। साँस रोके सुनने को तैयार हो रही थी मैं।

-'मेरी एक बेटी है।' कहकर जो ब्रूनो मेरी प्रतिक्रिया जानने को थम गया। लेकिन इसमें छिपाने की क्या बात थी? जब उसने मुझे अपने तलाक़ का बता दिया था तो बेटी का बताने से क्या मेरा फ़ैसला कुछ फ़र्क होत! मुझे समझ नहीं आया मैं क्या प्रतिक्रिया दूँ। एक हलका-सा धक्का इस बात का ज़रूर लगा था कि जो ब्रूनो झूठ भी बोल सकता

है!
-'क्या तुम्हारे साथ रहती है?'
-'नहीं, अपनी माँ के साथ।'
मुझे लगा वह किसी तक़लीफ़ में है... पर मेरे मुँह से कोई शब्द ही नहीं निकल पा रहा था।
'दरअसल वह कुछ ठीक नहीं। मुझे मेरी एक्स-वाइफ़ ने बताया तक नहीं कि उसकी हालत इतनी ख़राब हो चुकी है... उसने स्कूल जाना तक छोड़ रखा है।
'क्या हुआ है उसे?'
'कुछ दिमाग़ी तकलीफ़... मैं जिस डॉक्टर के पास उसे भेजना चाहता हूँ... वह मानती नहीं... जर्मन है न। बड़ी ज़िद्दी और असर्टिव है।'
'लेकिन इतना कुछ हो गया और तुम्हें पता ही नहीं लगा? क्या तुम अपनी बेटी से मिलते नहीं हो?'
'इधर कुछ सालों से नहीं... अब वह मुझसे मिलना भी नहीं चाहती। पता नहीं माँ ने क्या-क्या पट्टी पढ़ाई है। पिछले हफ़्ते मैं उसे डिनर पर साथ ले गया तो मुझे बुरा भला कहती रहीं कि इटैलियन बड़े स्वार्थी, लापरवाह और अनैतिक किस्म के होते हैं... सब माँ वाली बातों का रट्टा मारा हुआ। अभी तक उसकी परवरिश का खर्चा मैं देता रहा हूँ- तब भी मुझको वे बातें सुनने को मिल रही हैं... बहुत टूटता है मन। वे माँ-बेटी कभी भी मुझे अपराध-बोझ से मुक्त नहीं होने देंगी।

जिस अपने संसार को जो मेरे सामने खोल रहा था, उससे मैं अब तक पूरी तरह नावाक़िफ़ थी। फिर भी मुझे उससे हमदर्दी ही हुई।
'तुम्हें बुरा नहीं मानना चाहिए जो। बच्चे तो हमेशा माँ के ही रहते हैं... फिर वह तो माँ के पास ही रहती हैं।'
'लेकिन इसका यह मतलब तो नहीं कि हर वक़्त बच्ची को मेरे खिलाफ़ भड़काती रहे। बेटी को तो मैं अब भी बेहद प्यार करता हूँ... उसकी ऐसी चोटवाली बातें... मेरा इस दुनिया में और है भी कौन... एक बेटी ही तो है।'
ब्रूनो के आखिरी वाक्य ने मुझे तक़लीफ़ पहुँचाई। मैं कोई नहीं उसकी। सच में अभी तो एक पराई औरत ही हूँ... किसी और की ब्याहता। मुझे अपना कहने का हक़ नहीं महसूस करता होगा। अभी तो हमारे बीच आश्वासन और उम्मीद का ही रिश्ता है। लेकिन संदेह तो कहीं नहीं... सिर्फ़ विश्वास ही विश्वास। मेरा मन हुआ उसके माथे पर ओंठ रख कर उसे तसल्ली दूँ। रेस्तराँ में लंच के वक़्त की भीड़ थी। मैंने बस हल्के से उसका हाथ दबा दिया।
'मैं सोचता हूँ उसे स्वामी जी के पास ले जाऊँ, शायद उनके आशीर्वाद से कुछ फ़र्क पड़े।'
'तुम्हें विश्वास है उनकी सामर्थ्य में?'
'हाँ है।"
जिस मज़बूती से जो ब्रूनो ने हाँ कही, मन में कहीं खटका कि वह स्वामी जी को बहुत गंभीरता से ले रहा है। लेकिन मैंने रोकना या कुछ उफ् करना भी ठीक न समझा। आखिर उनके बारे में मैं खुद इतना नहीं जानती थी कि कुछ साबित कर सकूँ।
'तो ले जाना।'
'पता नहीं वह राज़ी होगी या नहीं।'
लंच के बाद वह मुझे अपने अपार्टमेंट ले गया था। उससे प्यार करते हुए मैंने महसूस किया कि आज हमारे रिश्ते को एक नया धरातल मिल गया था।
तीन चार रोज़ बाद जब मैं उसे मिली तो वह बहुत खीझ रहा था कि उसकी बेटी ने स्वामी जी के पास जाने से इंकार कर दिया है।
'मैं तुम्हारी कुछ मदद कर सकती हूँ।'

अभिव्यक्ति (www.abhivyakti-hindi.org) से मुफ्त डाउनलोड

'नहीं स्वामी जी ने कहा है कि वही कुछ करेंगे कि जिसके असर से वह आने को मान जाए। लेकिन तुम्हारी बहुत सपोर्ट है मुझे तनु। यू आर लाइक ओ ब्रैथ ऑफ फ्रेश एयर। तुम ऐसी ही रहना तनु। यही तुम्हारी मदद होगी।

मेरे इम्तहान नज़दीक थे और मैं जी-तोड़ मेहनत कर रही थी- अपनी कैद से छुटकारा पाने के लिए। अपने जो ब्रूनो के साथ नई ज़िंदगी शुरू करने के लिए। मेरे पति को मेरी किसी योजना की भनक नहीं थी। उसने मेरे 'व्यक्ति' में कभी कोई दिलचस्पी ली ही नहीं कि मैं अपना भीतरी जगत उसके आगे खोलती। मैं घर के दूसरे पदार्थों की तरह ही एक पदार्थ थी। वह तभी घर रहता जबकि उसके माँ-बाप या दूसरे कोई रिश्तेदार हिंदुस्तान से मिलने-रहने के लिए आते। बाकी वक़्त उसकी ज़िंदगी का बहुत कम अता-पता रहता मुझे। मुझे स्कूल की फीस और घर चलाने का खर्चा हर महीने मिल जाता था। शुरू में उसकी ग़ैरमौजूदगी मुझे किसी उड़ने को तत्पर परनुचे पक्षी-सा घायल और पागल कर जाती थी। मैं सोच भी नहीं सकती थी कि कोई आदमी इतना कायर हो सकता है कि सिर्फ़ अपनी ही कायरता की वजह से ऐसी दोहरी ज़िंदगी जीने पर मजबूर हो जाए। पर अब अर्जुन के तीर की तरह मेरी निगाह सिर्फ़ मुक्ति पर जमी थी। और द्रौपदी की तरह मेरा फल भी जो ब्रूनो की उपलब्धि में निश्चित था।

जिस दिन मेरा आखिरी परचा था, मैं बुरी तरह नर्वस थी। मुझे इम्तहान बढ़िया करना ही था। परचा जब सच में अच्छा हो गया तो मैं अपनी योजनाओं के पूरा होने की संभावनाओं से खुश लगभग काँप रही थी। मैं सबसे पहले जो ब्रूनो को फ़ोन करके बताना चाहती थी और उससे मिलने का तय करना चाहती थी। स्कूल के बाहर आकर पब्लिक बूथ से ही मैंने पच्चीस सेंट डाल कर फ़ोन मिलाया। सड़क पर कुछ शोर था या क्या कि उधर से आती आवाज़ मुझसे पहचानी ही नहीं गई। कई बार हलो करने के बाद बात शुरू हुई। वह दूसरी तरफ़ वाली आवाज़ जो शब्द रच रही थी वे मैंने कभी नहीं सुने थे, कभी सोचे भी नहीं थे...कहीं दूर से भी कोई संभावना नहीं पैदा हुई थी। 'मैं अब तुमसे नहीं मिलूँगा तनु।... स्वामी जी ने कहा है कि मेरा-तुम्हारा मिलना शुभ नहीं है।'

'क्या मतलब? तुमने स्वामी जी से मेरे बारे में बात की थी?'

'वो मेरी बेटी... दरअसल मेरी सारी परेशानियाँ दूर करने के लिए एक लंबा जाप करवा रहे हैं। उन्होंने मुझसे मेरी भावी-योजनाओं के बारे में पूछा था। मैंने बताया कि मैं एक हिंदुस्तानी लड़की से शादी करने जा रहा हूँ। उनके ज़्यादा पूछने पर मैंने तुम्हारा शादी-शुदा और नाखुश होना भी बताया था... वे कहने लगे यह बड़ा अधर्म होगा... कुछ गणना करके वे बोले यह हम दोनों के लिए ही बहुत अनर्थकारी है।'

'तुम मज़ाक कर रहे रो जो?'
'नहीं।'
'तुमने इतनी आसानी से उनकी बात मान ली?'
'उन्होंने सभी बातें सही बताई हैं। यह कैसे ग़लत मान लूँ? तुम्हारा-मेरा भला अलग हो रहने में ही है।'
'दिस इज़ स्टुपिड। आई कांट बिलीव दिस। ओह जो! तुम एक भगवे कपड़े वाले की बात का इतना विश्वास कर गए कि मैं... मुझको...'
मेरी आवाज़ टूट रही थी... मैं कहूँ भी तो क्या? गले में जैसे पत्थर अटका हुआ था। उधर से जो ब्रूनो की घिसती हुई आवाज़ टेलीफ़ोन के कान से सटे छिद्रों से सुइयों की तरह उभर रही थी...

'ये मेरी-तुम्हारी ज़िंदगी का सवाल है तनु... जान-बूझकर रिस्क लेने का क्या मतलब... तनु... आर यू देयर... कैन यू हियर मी तनु...'
'ओह, इने कमज़ोर! इतने डरपोक हो तुम! और मैं तुम्हें अपना मसीहा समझती रही।

मैंने फ़ोन का चोगा यों ही लटकता छोड़ दिया... गुस्सा, आक्रोश, क्षोभ और आँसू पता नहीं क्या-क्या घुल-मिल कर मेरी नसों को चकनाचूर किए दे रहा था। मेरी पूरी ज़िंदगी को जैसे किसी दीवार में चुन दिया गया था। सब कुछ फिर से एक शून्य में आ अटका था... क्या करूँगी अब मैं... कहाँ जाऊँगी। फिर से उस अंधेरी गुफ़ा में... जहाँ अब और भी ज़्यादा अंधेरा भर चुका था।

इन स्वामी जी ने मेरे जीवन में भी बड़े भारी परिवर्तन की बात कही थी। क्या यही परिवर्तन था?
भरी हुई अंडरग्राऊँड ट्रेन में मुझे बैठने की जगह नहीं मिली तो निढाल-सी मैं हाथ टिकाने वाले लोहे के मोटे डंडे पर ही माथा टिकाकर खड़ी हो गई। एक पुरुष सवारी ने मेरी थकी-कमज़ोर हालत देख मेरे कंधे को हल्का-सा छुआ और मुझे अपनी सीट पर बैठने का इशारा किया। पता नहीं उससे क्या गुज़र गया मुझ पर। मन हुआ चिल्ला-चिल्ला कर कह दूँ, 'तुम आदमियों में औरतों को लेकर मसीहा बनने की ख़्वाहिश क्यों होती है? और हम औरतें भी मान जाती हैं कि ये पुरुष मसीहा हो सकते हैं। हमारी ज़िंदगी सँवार सकते हैं... जबकि उनसे अपनी ही ज़िंदगी का बोझ नहीं सँभलता... सबके सब लंगड़े मसीहे।
लेकिन मैं... मैं ही क्यों मसीहों का इंतज़ार करती हूँ।

मैं उस आदमी का सीट छोड़ने की शराफ़त दिखाने का शुक्रिया कहा और डंडे पर वैसे ही सिर टिकाए खड़ी रही।

(२४ अगस्त २००९ को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)

वे दोनो

छत से फ़र्श तक के लंबे शीशों से जड़ी उस बड़ी सी बैठक में खूब सारी दिन की रौशनी भरी हुई थी। फ़र्श पर बिछी सफ़ेद चादरों पर सफ़ेद वस्त्र पहने ढेर सारे लोग उस रौशनी का ही हिस्सा लग रहे थे। कमरे में घुसते ही तारक को लगा जैसे उस श्वेतता में घुले मौत के सर्दपन और जड़ता ने अचानक उसके भीतर को जकड़ लिया है। बीचोबीच फूलों की माला चढ़ी एक बड़ी-सी रति की तस्वीर थी जिसका धूप, दीप और गीता के श्लोकों से अभिषेक किया जा रहा था। रति अब तस्वीर भर थी! तारक की स्तब्ध पनियायी आँखें निस्सहाय-सी रजत को खोजने लगी।

रजत सारा वक्त लोगों से घिरा ही रहा था। उसकी माँ, उसके बच्चे, और दूसरे रिश्तेदार, कोई न कोई उसके आसपास था ही। उन दोनों की आँख एक दूसरे से दो एक बार मिली। पर रजत अपने से बाहर नहीं आ पाया था। तारक ने किसी तरह अपनी शोकभावना व्यक्त कर दी थी। न भी व्यक्त करता तो क्या, रजत को तो खुद भी अहसास होगा उसकी अंतर्भावना का। एक वही तो है इस भीड़ में जो जानता है कि वह क्यों यहाँ है। बाकी तो तारक किसी से परिचित ही नहीं। सिवाय कुछेक रति के कुलीग्ज के।

एक दो कुलीग्ज से ही उसकी बात हुई रति के बारे में। वे उसे परिवार का मित्र मानकर बात कर रहे थे। यों परिवार का मित्र तो वह था ही, पर इससे अलग या ऊपर भी कुछ था, यह शायद रजत के इलावा और कोई नहीं जानता था। जबकि रजत भी पूरा कहाँ जानता है, ख़ास तौर से वह सब कुछ जो तारक महसूस करता रहा है, या जो कुछ तारक और रति के बीच में रहा या अभी भी जिसका बहुत कुछ बचा था।

यों तारक ने बहुत बार सोचा कि अब रति नहीं रही तो उसके यहाँ जाने का कोई फ़ायदा नहीं, उसकी तकलीफ़ बढ़ेगी ही, फिर लगा कि नहीं उसे रजत से मिलने जाना होगा। रजत भी तो उसका दोस्त है। यों रति उन दोनों के बीच न होती तो वे शायद बहुत गहरे दोस्त हो सकते थे। फिर भी वह खुद को कई तरह से रजत के करीब महसूस करता था और रजत भी बहुत मामलों में उसी से सलाह करके चलता था। उस पर भरोसा करता था जो कि उसके मन के दोस्ती के भाव को ही जताती थी। चूँकि तारक की विशेषता दिल के रोगों में थी, वह रति के हार्टअटैक के बाद से उस से अक्सर रति के बारे में सलाह लेता। यहाँ तक कि रति से भी कोई शिकायत होती तो तारक से ही कहता, "देखो न! इसका कोलेस्ट्राल इतना हाई चल रहा है और मैड़म चीज़, मीट सभी कुछ खाती है। अभी रेस्तराँ ले चलो पूरा का पूरा स्टेक गटक जाएगी। कैसे करूँ, यह तो खुद को नुकसान पहुँचाने से बाज़ नहीं आती।" और तारक तब टिका देता, "कैसी डाक्टर हो तुम रति? मरीज़ों को उपदेश देती रहती हो और खुद..."
फिर उसने खुद ही एक विशेषण गढ़ा था रति के लिए "नानकंप्लायंट" यानि कि जो कुछ भी कहा जाएगा उसका विरोध ही करेगी रति। और किसी वजह से नहीं बल्कि विरोध करने के लिए विरोध!

तब रति और भी तेवर चढ़ाकर बोलती, "रजत तो पहले ही मेरे पीछे पड़ा रहता है, अब तुम भी इसीसे मिल गए हो। वाह जी वाह! दोस्त किसके हो तुम? मेरे या रजत के?"
तारक तब चुप रह जाता था, रजत भी कुछ नहीं कहता। एक प्रिय अप्रिय सत्य! शायद रति भी इसीलिए कहती थी कि तारक तब लाजवाब हो जाएगा। क्योंकि रति जानती है कि जो वह तारक के लिए है वह और कोई नहीं हो सकता, और रजत को भी इसका अंदाज़ है। इसीसे रजत ने शुरू में चाहे कितना विद्रोह किया हो, कितना लड़ाई झगड़ा, फिर धीरे-धीरे मान लिया था इस रिश्ते को। रति के लिए ही अंगीकार कर लिया था तारक को भी। रति ने ही उसे बतालाया था जब रजत ने उसे बाहों में भरकर कहा था, "इतना प्यार करता हूँ तुम्हें कि यह भी स्वीकारने के लिए राजी हूँ।"
एक हूक सी उठी थी तारक के भीतर जिसे इतना प्यार मिला हो, इतना वह इस तरह से उन दोनों की ज़िंदगी को ही सूना करके रुख़सत हो ली। तारक के मन में गुस्सा भी आया, शायद अपनी सेहत का ध्यान रखती तो कुछ और जी जाती! उन दोनों से ही तो चार-पाँच साल छोटी थी वह, जी भी सकती थी! पर अब और तारक ने लंबी साँस भरी!
रति की एक कुलीग बता रही थी, "परसों तो काम पर आई हुई थी रति। मैं सोच भी नहीं सकती थी कि इतना भारी स्ट्रोक हो सकता है कि एक ही लपेट में ले जाए मुझे तो विश्वास ही नहीं होता।"
तारक को भी विश्वास नहीं होता था। उसी दिन सुबह रति ने उससे फोन पर बात की थी और उससे मज़ाक किया था, "मेरे जन्मदिन पर आओगे?"
दरअसल सारा झगड़ा कुछ साल पहले रति के जन्मदिन को लेकर ही शुरू हुआ था, वर्ना शायद रजत को उन दोनों के बीच बढ़ते रिश्ते की तनिक ख़बर न लगती।
रति ने उसे बतलाया था कि उसके जन्मदिन पर वह और रजत आम तौर पर शाम को बाहर किसी बढ़िया से फ्रेंच रेस्तरां में खाना खाने जाते हैं तब तारक ने कहा था, "ठीक है तो लंच तुम मेरे साथ लेना।"
रति मान गई थी। उसने उसी दिन रति के शहर पहुँचने के लिए फ्लाईट भी बुक करवा ली थी, पर जब ठीक जन्मदिन आनेवाला था तो रति ने उसे बतलाया था कि रजत को ठीक नहीं लग रहा मेरा तुम्हारे साथ लंच पर जाना। वह पूछ रहा था कि इतना इम्पॉर्टंट कैसे हो गया यह आदमी कि तुमको उसे जन्मदिन पर ज़रूर मिलना है।
"तुमने क्या कहा?" तारक जिज्ञासु हो उठा था।
"यही कि तुमको किसी काम से शहर में होना था इसलिए लंच पर मिलने की बात की। इस पर उसने कहा कि अगले दिन मिल लो। जन्मदिन वाला दिन तो उसी के लिए है, कोई और क्यों?"
फिर वह बोली, "इसी पर उसे शक हो रहा है कि यह कोई आम दोस्त नहीं..."
तारक ने जोड़ दिया था, "प्रेमी है"
"हाँ यही शक हो रहा है उसे!"
"तो हूँ या नहीं..."
"शायद हो, यही मुसीबत है।"
तारक ने कहा था, "अब तो टिकट ली हुई है। मैं तो आऊँगा ही, तुम मिल सको तो मिलना वर्ना न मिलना। चाहे पाँच मिनट के लिए या कॉफी के लिए भी आ जाओगी तो मेरे लिए वही काफी होगा। तुम्हारे जन्मदिन पर तुम्हें देख भर लूँ।"
"तुम भी कमाल के रोमाँटिक हो, पर सच कहूँ तो मैं भी तुमसे मिलना चाहती हूँ उस दिन कुछ न कुछ तो जुगाड़ना पड़ेगा।"

"मेरे लिए तुम्हारा जन्मदिन मेरी ज़िंदगी का बहुत अहं दिन है, समझी।"
एयरपोर्ट पहुँच कर तारक ने फोन किया था।
रति बोली थी, "रजत कह रहा है तुम हमें डिनर पर जॉयन कर लो।"
तारक बहुत हैरान हुआ था, पर रति ने फोन रजत को पकड़ा दिया था। तारक एकदम संकट में पड़ गया था। उसने खुद को बचाने की कोशिश की, "सॉरी मैं तो यहाँ आया था तो सोचा रति से मिल लूँगा। पर इस तरह आप लोगों के प्रोग्राम में।"
रजत ने जोर देकर कहा था, "नहीं भाई, बहुत तारीफ़ें सुन रहा हूँ बीवी से, ज़रा हम भी तो मिलें आपसे। आप चाहे तो घर पर आ जाइए, या फिर सीधे रेस्तरां पर मिलेंगे।
"पर आप लोगों का तो डिनर पर साथ जाने का कार्यक्रम था न।"
"आप लंच पर फ्री है तो लंच पर मिल लेते हैं। यों मुझे तो डिनर ही पसंद है, जैसा आप कहे।"

रजत बिल्कुल दोस्ताना ढंग से बात कर रहा था। एक पल को उसकी टोन में कुछ तनाव तारक को महसूस हुआ था पर अगले ही पल आवाज़ फिर सहज हो गई थी। तारक मान गया पर टैक्सी लेकर पहले होटल में सामान छोड़ा और इस दौरान खुद को मानसिक तौर पर तैयार भी करता रहा कि कैसे पेश आना है अपने रकीब से। देखा जाय तो रिश्ता रकीब का ही था। बाकी वे कितने भी सभ्य या समझदार इंसानों की तरह एक दूसरे से बर्ताव करे, आखिर वे तीनों सम्मानित पेशे के थे। तारक हार्ट स्पेशालिस्ट था तो रजत अंग्रेज़ी साहित्य का प्रोफेसर और रति सायकायट्रिस्ट, इंसानी मन की कमज़ोरियों को समझना, मनोरोगों का इलाज करना रति की विशेषता तो थी ही, पर इंसानी आकर्षण, एक दूसरे के प्रति खिंचाव या ऐसे रिश्तोंको समझने की संस्कृति तो कहीं तीनों में ही थी।

रजत इस बात को खूब समझता था कि किसी भी औरत के लिए किसी दूसरे पुरुष के प्रति खिंचाव हो जाना बहुत सहज था, वहीं एक पति और पत्नी से प्रेम करने वाले के रूप में वह रति के इस व्यवहार से ईर्ष्यालु भी हो उठता था। एक सभ्य इंसान के नाते वह ईर्ष्या को दबा कर तारक के प्रति भी मित्रवत व्यवहार करना चाहता था पर वही उसे रति के व्यवहार से कष्ट पहुँचता था कि वह उसके इलावा भी किसी दूसरे पुरुष को चाह सकती है, जिससे उसके मन में आक्रोश और वितृष्णा का भाव उठता, कभी वह अपने को उदार बना कर यह कहना चाहता कि रति अगर किसी दूसरे को चाहती है तो बेशक उसको भी क्यों न पाये। साथ ही जब क्रोध होता तो एक तरह से जैसे वह रति को सजा देने के लिए कह डालता, "तुम जाओ, दोनों साथ रहो।" पर जो पीड़ा वह उसमें सह रहा होता वह रति और तारक दोनों के लिए ही असह्य होती। रति ने कहा था, "क्या तारक और मैं दोस्त नहीं हो सकते? और इतने दोस्त है एक वह व्यक्ति जिससे बात करके मुझे खुशी मिलती है वह दोस्त क्यों नहीं बन सकता। सिर्फ़ इसलिए कि उसके मन में तीखी भावना है मेरे लिए... या शरीरों का आकर्षण भी है..."

रजत तब तर्क से सारी बात को समझने समझाने की कोशिश करता। हाँ करते करते कह देता, "औरत आदमी में दोस्ती हो ही नहीं सकती क्योंकि जहाँ शरीरों का आकर्षण हो वहाँ दोस्ती जैसा निष्कपट भाव कैसे पनप सकता है?" तब रति दोस्ती का एक और पक्ष पेश करती, "तुम्हारे कहने का मतलब तो वही दकियानूसी बात हुई कि शरीर पाप का मूल है जबकि तुम खुद ही यह पहले कह चुके हो कि शरीरों का मसला हल हो जाए तो औरत मर्द बहुत खुबसूरत दोस्त हो सकते हैं, शरीर को अहमियत दी क्यों जाए? शरीर मिल जाने से उनका दोस्ती में बाधा बनने का मसला ख़त्म हो जाता है।"

रजत रति की बात मान भी जाता था, पर रति फिर तारक को यह भी बताती थी, "वन कांट टेक हिम फॉर ग्रांटेड। कल को वह अपना कोई नया तर्क दे देगा।"

शायद इसीसे तारक भी अचानक हिम्मत हारने लगा था। कैसे सामना करेगा वह रजत का? यों वह रजत से एकाध बार पहले मिल चुका था पर तब उसको यह अंदाज़ा नहीं था कि रति और उसके बीच कुछ था, जबकि तारक तब भी कुछ आत्मसजग सा हो रहा था पर कुछ मिनटों की मुलाक़ात को सँभाल लेना कोई बड़ी बात नहीं थी और यों भी रजत उसे भला आदमी लगा था। यह भी सोचा था कि अगर रति उन दोनों के बीच न होती तो यह व्यक्ति उसका दोस्त हो सकता था। यों रति के होने के बावजूद अंततः वे दोस्त बने ही पर इस दोस्ती का तानाबाना वैसा न था जैसे खालिस दोस्ती का होता है। इसमें रति के रेशे बुने हुए थे, जो एक और ही रंगत लिए थे और वह रंगत तारक को बहुत प्यारी थी, उस दोस्ती से ज़्यादा।

तारक ने होटल पहुँच कर फोन कर दिया था कि डिनर पर मिलना ही ठीक रहेगा और वह अपना काम इस दौरान कर लेगा। रजत आसानी से यह बात मान गया और कहा कि वह ड्रिंक्स पर पहले घर पर आ जाए, उसके बाद रेस्तराँ खाना खाने चले जाएँगे।

शाम को जब वह चलने लगा तो फोन बजा था। दूसरी ओर रति थी, हैलो कहते ही रति ने कहा, "सुनो तुम मत आना, मेरे घर में बहुत टेंशन चल रही है।" इससे पहले कि वह कुछ कहता रति ने फोन डिसकनैक्ट कर दिया।
रात को कोई फ्लाईट नहीं जाती थी वर्ना वह उसी वक्त शहर छोड़ के चला जाता।
आधे घंटे बाद ही घंटी फिर बजी। रति पूछ रही थी कि आ रहे हो? तारक बौखला गया कि आखिर हो क्या रहा है? क्या यह रति के मन की उलझन है या कि रजत की, या दोनों की या रति सिर्फ़ रजत की उलझन को व्यक्त कर रही थी। बोली थी, "जल्दी आ जाओ, हम लोग इंतज़ार कर रहे हैं।"
वह पहुँचा तो रति ने अकेले ही उसका स्वागत किया था। वह जानता था कि दोनों बच्चे कॉलेजों में हैं पर रजत काफी देर तक बैठक में नहीं आया तो तारक हैरान हुआ। रति बोली, "वह नहा रहा है।" फिर मुस्करा कर जोड़ा, "शायद हम दोनों को कुछ वक्त देना चाहता है।"

तारक तब कुछ नर्वस हुआ था। उसे आगे बढ़कर रति को चूमने का हौसला नहीं हुआ। उसे लगा कि रति भी सहज नहीं थी जैसे कि आम तौर पर होती है, पर उसने कुछ कहा नहीं। वह खुद भी तो सहज नहीं हो पा रहा था, जैसे लड़की के बाप के घर में शादी का प्रस्ताव लेकर जा रहा हो, कुछ कुछ इसी तरह का महसूस हो रहा था। वहीं डट कर परचा करना था कि इम्तहान में फेल न हो जाए।

रजत ने कमरे में आते ही बड़े तपाक से हैलो किया, कुछ औपचारिक सी बात की। फिर उससे ड्रिंक पूछा और किचन में बर्फ़ वगैरह का इंतज़ाम करने के लिए फिर से गायब हो गया। तारक को लगा कि सहज होने की बहुत कोशिश के बावजूद रजत बहुत असहज है।

विस्की का घूँट लेते हुए तारक ने ही रजत से उसके काम के बारे में पूछना शुरू किया। बात कही जा नहीं रही थी, तभी रति एक नयी किताब की चर्चा करने लगी जिसका रिव्यू सुबह के अखबार में छपा था। तारक ने हवाई जहाज़ में ही उसके बारे में पढ़ा था, फिर तो बातचीत खूब गरमागरम होने लगी। रजत ने दक्षिण एशियाई अंग्रेज़ी लेखकों के बारे में अपने विचार झाड़ने शुरू कर दिए। यहाँ तक कि रति ने अचानक घड़ी देखी तो पता लगा कि रेस्तराँ की रिज़र्वेशन का वक्त हो चुका था। रजत ने रेस्तराँ को फोन

किया कि कुछ मिनट लेट पहुँचेंगे और तारक को बोला कि जल्दी से ड्रिंक खत्म कर ले या गाड़ी में ही ले चले। दोनों ने दो तीन ड्रिंक चढ़ा रखे थे। मौज सी भी आई हुई थी, रजत ही कार चला रहा था और तारक पीछे वाली सीट पर बैठा था। अचानक रजत कुछ नशे और कुछ अपनी धुन में बोला, "तो तुम मेरी बीवी से प्यार करते हो!" तारक भौंचक-सा हो गया। यों ही बैठा रहा जैसे रजत की बात को सुना न हो या वह गंभीरता से लेने लायक न हो!

रजत ने अपनी बात को सवाल बनाकर दुबारा पेश किया, "क्यों तारक? मेरी बीवी से प्यार करते हो या नहीं?"
तारक ने कहा, "हाँ।" और चुप कर गया। उसे लग रहा था वह जो भी जवाब देगा, खतरे से खाली नहीं, पर यह जवाब सच था, तो सच बोल कर ही मार खायी जाए। उसे किसी लड़की के पिता से हाथ माँगने नहीं जाना पड़ा था, आज यह भी सही।
"तुम भी प्यार करते हो, वह भी करती है तो तुम दोनों साथ क्यों नहीं रहते?"
तारक बोल पड़ा था, "यह इतना आसान नहीं।"
रजत इस पर आक्रमण करता-सा बोला, "कमाल है! प्यार भी करते है और ज़िम्मेवारी भी नहीं निभाना चाहते।" तारक को महसूस हो रहा था कि रजत कह तो कुछ रहा है और पहुँचाना कुछ और चाहता है। फिर भी वह जवाब तो उसी बात का दे सकता था जो कि पूछी जा रही थी। यह कह कर उसे नाराज़ भी नहीं करना चाहता था कि रजत सिर्फ़ अपने भीतर के आक्रोश, आतंक और आग को आवाज़ दे रहा था। बोला, "यह बात नहीं, में आज भी रति के साथ ज़िंदगी शुरू करने को तैयार हूँ। जहाँ तक मैं जानता हूँ रति अपने शहर को छोड़ कर और कहीं नहीं जाएगी, न वह तुमको छोड़ने को तैयार होगी, जहाँ तक मैं रति को जानता हूँ...।"
रति चुपचाप अपने पर अंकुश लगाए दोनों की बात सुन रही थी। न तो वह रजत के पक्ष में कुछ बोलना चाहती थी न तारक के पक्ष में ही बोल सकती थी। फिर भी दोनों के बीच तारतम्य बिठाए रखने की ज़िम्मेवारी भी उसी की थी और वह समझ नहीं पा रही थी कि किस तरह इस बातचीत को सीमायें लाँघने से बचाया जाए। उपर से उसे डर लग रहा था कि आवेश में रजत कहीं टक्कर न मार दे।
रेस्तराँ बहुर दूर था भी नहीं। बात पूरे चरम पर चल रही थी कि रेस्तराँ आ गया। रति ने टोका, "रजत पार्किंग ढूँढो, रेस्तराँ आ गया।" रेस्तराँ के साथ ही पार्किंग गैराज में गाड़ी छोड़ कर तीनों अंदर चले गए।

वेटर ने उनको मेज पर बिठाया और ड्रिंक के लिए पूछा तथा मेन्यू लाकर दिए। तीनों के तीनों उस मेज पर इस तरह खामोश और भरे बैठे थे कि मेन्यू में सिर डुबोना एक राहत बन गया था।
तीनों ने अपने-अपने आर्डर दिए पर बात कुछ बन नहीं रही थी। हर कोई कुछ भी कहने में ज़्यादा ही सतर्क हो रहा था।
अचानक रति बोली, "रजत, तुमको इतनी ज़्यादा तकलीफ़ थी तो तुमने मना क्यों नहीं कर दिया। मैं तो तारक को कह चुकी थी कि आज साथ खाना नहीं होगा। तुम्हीं ने ज़ोर दिया कि ज़रूर बुलाओ, अब इस तरह क्यों बर्ताव कर रहे हो।"
रजत और भड़क गया, "मैं तो सिर्फ़ यह कह रहा हूँ कि तुम लोग एक दूसरे को प्यार करते हो तो मैं क्या कर रहा हूँ यहाँ? तुम जाओ एक दूसरे के साथ रहो।" दोनों की आवाज़ें ऊँची हो रही थी और दूसरी मेजों पर बैठे लोगों की निगाहें इस ओर उठ आई थी।
तारक ने धीरे से सुझाया था, "मेरे ख़याल से हमें ये बातें यहाँ नहीं करनी चाहिए।"
सहसा रति ने होश में आते कहा, "हाँ इतने बढ़िया रेस्तराँ में खाना खाने आए हैं। कुछ खाने पर भी तो ध्यान दें, फिर आज मेरा जन्मदिन है, आई वांट टू हैव ए गुड मील।"

फिर भी खाने पर तीनों मे से किसी का ध्यान नहीं लग सका। तीनों औपचारिक-सी बात में लग गए थे। तारक ने ही शहर के नवीनतम रेस्तराँओं के बारे में ताज़ी पढ़ी समीक्षा का ज़िक्र छेड़ दिया था।

रजत ने कार से जब उसे होटल छोड़ा तो तारक ने उपर कमरे में आकर ड्रिंक लेने के लिए कहा पर जैसा कि वह अपेक्षा कर रहा था रजत ने देर होने का बहाना बना छुट्टी माँग ली थी। रति तब भी कुछ नहीं बोली थी, शायद उसे डर था कि उसका कुछ भी कहना रजत के लिए घाव पर नमक छिड़कने जैसा होगा, या उसकी कोई भी बात का गलत मतलब निकाल कर रजत भड़क सकता था। यों देर हो भी चुकी थी।

पर तारक यह भी जानता था कि रति एक नंबर की जिद्दी थी, जो उसे चाहिए था, चाहिए ही था, उसे रोका नहीं जा सकता था। वह उपर से मान जाएगी पर भीतर से कभी माफ़ नहीं करेगी। शायद इसी से रजत भी बिगड़ी हुई लाड़ली बेटी की तरह रति की हर चाह या माँग को विरोध करके भी अंततः मान जाता था।

लौट आने के दो चार दिन बाद ही उसके फोन पर रति ने संदेस छोड़ा था, "तुम्हारा आना ठीक नहीं हुआ। सॉरी, तुम्हें बुलाकर भी मिल नहीं पाई। अब लगता है कभी नहीं मिलूँगी। लैट अस स्टॉप दिस हियर, प्लीज मुझसे संपर्क मत करना।"
तारक बहुत दिन परेशान घूमता रहा था, पर रति को फोन भी नहीं किया, उसने मना जो कर डाला था। उसे फोन करते हुए तारक को लगता कि वह खुद को उस पर लाद रहा है और यह स्थिति उसे कभी गँवारा नहीं थी। हर दिन किसी ज्वालामुखी-सा लावे से लदा हुआ गुज़रता। अंदर ही अंदर सब तप रहा था। महीने भर बाद रति ने फोन किया था, "गुस्सा हो न मुझसे, तुमसे माफी भी नहीं माँग सकी।"
"उसकी तो कोई ज़रूरत नहीं।"
"फिर भी, सोचा था तुमसे कभी बात नहीं करूँगी। इसीसे तुमको संपर्क करने से मना किया था। रजत को भी यही मालूम है कि तुमसे रिश्ता तोड़ दिया है पर अब मुझी से बात किए बिना रहा नहीं जा रहा।"
"रजत को मालूम है मुझसे बात कर रही हो?"
"वह बेहद गुस्सा है तुमसे जैसे कि सारा दोष तुम्हारा हो कि तुमने उसकी बीवी को फँसा लिया।"
वे इसी तरह जब मौका लगता बात कर लेते। तारक के दिल दिमाग पर रति ही छायी रहती। वह ऐसे ही पलों के दौरान जीता जब दोनों के बीच कुछ संपर्क होता, बाकी के पल उन पलों के इंतज़ार में गुज़रते।
इस बीच रति को दिल का दौरा पड़ा था। घबराकर तारक को फोन कर डाला था रजत ने।

तारक आया तो रजत उसे अपनी गाड़ी में साथ हस्पताल ले आता जाता रहा। दोनों में एक दोस्ती का नाता तभी बना था। दुनिया जहान की बातें, रजत ने उसे घर पर ही ठहराया था। तारक तीन दिन बाद चला गया था वापस, पर दोनों की फोन पर बात हो जाती। रति अस्पताल से वापस आ गई थी। धीरे-धीरे वह सामान्य होकर वापस अपना काम सँभालने लगी। रति का जन्मदिन फिर से आनेवाला था। रति ने उसे कहा था, "रजत अपने आप ही बोल रहा है कि तुम आ जाओ इस बार मेरा जन्मदिन मनाने, बोलो

आओगे?"
तारक पुरानी बात याद करके घबरा गया था, "नहीं।" फिर से उसके भीतर सब घुमड़ने लगेगा सबको तकलीफ़ होगी।"

यह सच भी था। रजत कभी तो उसके प्रति बहुत मित्रवत हो जाता, वही अचानक गुस्सा, ईष्या उभर आते और वह अक्सर बेरूखी दिखाता। अचानक तारक को ऐसा महसूस हुआ जैसे रति उससे खुद यह सब कह रही हो। पल भर को वह भूल ही गया कि रति के ही अंत्येष्टि कर्म में वह शामिल हुआ है और दरअसल उसके यहाँ आने की एक वजह यह भी है कि वह रति को लिखे अपने खत वापस ले जाना चाहता है। उसे डर है कि कहीं वे खत रजत के हाथ न पड़ जायें।

तारक रति के साथ काम करनेवाली इस महिला डॉ. लोपेज़ से पहले मिला हुआ था। इस भीड़ में एक वही जानपहचान की थी। तारक का मन हुआ उससे पूछे कि क्या वह रति की दराज में उसके कागज़ात पर नज़र मार सकता है। तारक को अंदाज़ था कि उसके खत वह दफ्तर की मेज़ की दराज में रखती थी। पर वह जानता था कि ऐसा करना मुमकिन था नहीं। आखिर तारक को कैसे हक पहुँचता था रति की दराज खुलवाने का, वह तो एक परिवार के मित्र की हैसियत से वहाँ था। रजत ही कह सकता था, देखा जाए तो वे लोग खुद भी रजत से ही कहेंगे कि रति का सामान वह ले जाए। तब तो रजत की आँख ज़रूर उन पर पड़ेगी, तब शायद उसको बुरा लगेगा कि रति के साथ तारक का एक अपना रिश्ता था, उन तीनों की आपसी दोस्ती के बाहर। रजत को बेतहाशा चोट लगेगी, अब जबकि वह रति से जवाबतलबी भी नहीं कर सकता। रति अब कोई सफ़ाई नहीं पेश कर पाएगी। तारक के हक में कुछ भी नहीं कह सकेगी। किसी तर्क़ से रजत को लाजवाब नहीं कर पाएगी। नहीं वह ऐसा नहीं कर सकता, न यह रति के प्रति सही होगा न रजत के प्रति। उसे किसी न किसी तरह से खत पाने है।

रास्ते में आते हुए हवाई जहाज़ में तारक जब लगातार रति के साथ की अपनी ज़िंदगी के गुज़रे पल दुहरा रहा था, बार-बार उसे ध्यान आता कि जब से रति को दिल का दौरा हुआ था, वह उससे कहना चाहता था कि उसके खत विनष्ट कर दे। एक बार उसने बात उठाई तो रति बोली, "क्यों? तुम्हारे खत मेरे दफ्तर की दराज में सेफ पड़े हैं।"

शायद वह बिना कहे यह भी समझ गई थी कि तारक का इशारा किस ओर है, तभी बोली, "देखो जब तक मैं ज़िंदा हूँ, मैं उनको फाड़ कर न तो फेक सकती हूँ न जला सकती हूँ। एक बार मर गई तो क्या फ़र्क पड़ता है कि कोई क्या करेगा उनके साथ। तुमको तो फिक्र होनी नहीं चाहिए, अब तो वे मेरी अमानत है।" यह बातचीत दो एक महीने पहले की ही होगी। तारक ने सोचा था बात कभी फिर उठाएगा, पर उससे पहले ही।

तारक को भी तब यह अंदाज़ नहीं था कि रति के इलावा रजत से भी उसका नाता था। रति के जाने के बाद वह खुद को रजत के बहुत करीब महसूस कर रहा था और उसे लगा कि उसके खत रजत को उससे फिर दूर धकेल सकते थे। पर वह किसी तरह भी रजत को खोना नहीं चाहेगा, रजत कैसे रति का ही एक हिस्सा था।

उसने देखा लोगों से घिरा रजत का चेहरा बेहद निचुडा हुआ, रक्तहीन और सूखा-सा लग रहा था। रात भर सोया नहीं होगा इसलिए आँखों के नीचे कालापन उतर आया था। आँखें काफी अंदर को धँसी हुई थी, तारक को लगा कि वह शायद रजत से बेहतर हालत में है। फिर उसे रश्क भी हुआ, रजत अपने गम का खुला इज़हार कर सकता है, तारक

को यह सुविधा नहीं थी। वह किसी उजड़े आशिक के रूप में इस महफ़िल, इस मौत का सोग करनेवालों की महफिल में अपना असली चेहरा, अपना आशिक का चेहरा नहीं दिखा सकता था। अचानक उसकी आँखें भर आई अपने खोने की शिद्दत के अहसास से।

रति के वाक्य उसके कान में सरसराने लगे। जबसे उसे दिल का दौरा पड़ा था, वह जीवन की क्षणभंगुरता या इंसान के नाचीज़ होने के अस्तित्ववादी दर्शन को बहुत बघारने लग गई थी। शायद अपने जाने का अहसास उसे कहीं बहुत गहरे उदास कर जाता था। पर वही वह उस जाने को एक अवश्यंभावी, अकाट्य सत्य की तरह स्वीकार करके उससे समझौता भी करने लग गई थी। एक दिन उसने हडसन नदी के दूसरे सिरे से मैनहैटन की ओर देखते हुए कहा था, "देखो तो इन छोटे छोटे डिब्बा में कितने लाखों लोग रहते है। कितने छोटे है हम लोग! इतनी तंग ज़मीन पर कितनी बड़ी तादाद में समा जाते हैं। एकदम हज़ारों की संख्या में साथ-साथ जुड़े कीड़ों की तरह! फिर भी अपने आप को कितना बड़ा मानते हैं! राजनीति, धर्म और नैतिकता की तख्तियाँ चिपका कर कितना बड़ा होने का भुलावा देते रहते हैं खुद को!"

रजत को रति की इंसान को नाचीज़ करार देने वाली बातों से हमेशा बहुत चिढ़ छूटती थी। बोला था, "धर्म नैतिकता जीवन के सत्य है, इनको तुम भुलावा देने वाली चीज़ कैसे कह सकती हो? इंसान इसीलिए तो बाकी जीवों से अलग है कि वह सोच सकता है।"
"और सोच के धरातल पर हर चीज़ को गलत या सही साबित कर सकता है। नैतिकता को गढ़ सकता है या पूरा सत्यानास कर सकता है, ठीक है, मुझे तो उसमें कोई नुकसान नहीं।"
"हाँ नुकसान किसी का है तो मेरा ही।" रजत ने कहा तो तारक झट से बोल पड़ा था, "नुकसान तो तब होता जो मैं उसे भगा के ले जाता!"
रजत ने संजीदगी से कहा, "अब इसका दिल बँट गया है त़ो आधी संपत्ति तो लुट ही गई न! तुम भगा ले जाओ तो भी फ़र्क नहीं पड़ेगा। यह आधावाला हिस्सा तब भी यहीं रहेगा।"

सचमुच रजत का यह विश्वास सही था। रति और उसके रिश्ते की शुरुआत के दिनों में भावना के प्रवाह में बहता तारक रति के साथ एक नई ज़िंदगी के किवाड़ खोलने की बात सोच पाया था पर जल्द ही उसे अहसास हो गया था कि रति कहीं बहुत गहरे जुड़ी थी रजत के साथ कि वह कभी उस रिश्ते को तोड़ेगी नहीं। यों रजत भी शुरू के दिनों में भीतर से हिल गया था। यह झटका कि रति रजत को छोड़ किसी और को मन में ला सकती है उसे बहुत दूर जा फेंक आया था। फिर रति ने खोये विश्वास को वापस लौटा दिया। रजत अपने आधे नुकसान के साथ धीरे-धीरे शायद समझौता करना सीख गया था।

तारक को लगा कि वह आधे के साथ समझौता करना सीख गया था।
तारक को लगा कि वह आधे के साथ समझौता नहीं था। रजत के भीतर कहीं पूरे का भरोसा भी था, जैसे कि रति को सिर्फ़ एक बदलाव चाहिए था, जो तारक था। वर्ना वह पूरी रजत की ही थी, क्योंकि मौका आने पर रजत अपना पूरा हक जताने से चूकता नहीं था। हमेशा यही मानता था कि पहला हक उसी का है। तारक हमेशा बाद में आएगा, जैसे कि पेट भर लेने पर बचा हुआ भोजन किसी को भी दिया जा सकता है कुछ ऐसा रूख।

पर रति बचा हुआ भोजन नहीं थी, किसी तरह से भी उच्छिष्ट या अवशिष्ट नहीं, जो उसने रति में पाया था वह पहले ज़िंदगी में कभी नहीं मिला था। रति ने उसकी पहचान करायी थी परिपूर्णता से। रति को जानना ही जैसे उस संपूर्णता को छूना था। शायद रजत ने भी रति में ऐसा कुछ पाया था जो आम औरतों से अलग था। रति शादी के इतने बरस बाद भी उसे अपने में उलझाये थी और वह उससे मुक्त नहीं होना चाहता था। रति में बाहरी खूबसूरती के बावजूद व्यक्ति के दिमाग को भी उलझाये रखने का जो गुण था, उससे सच में जो भी पास आता, और खिंचता जाता। रति में भरपूर प्यार लेने की चाह थी तो भरपूर देने की क्षमता भी। इसीसे अभी भी उससे जी तो नहीं भरा था रजत का, शायद वह ऐसी औरत थी जो हमेशा नित नवीन होती रहे, सौंदर्य की एक परिभाषा यह भी तो दी गई है कि जो नित नूतन होता रहे वही सौंदर्य है। रति भी कभी पुरानी नहीं पड़ती। रोज़ कुछ नया होता है उसके पास, कोई नया ख़याल, कोई नई सूझ, कोई नई उकसाने उलझाने वाली बात, शायद इसे दिमागी सौंदर्य कहना होगा, जो कुछ भी उसमें था, बस खींचता था अपनी ओर, मोहता था, शायद क्या पर उँगली धरना उसे परिधि में बाँधने की भोंडी कोशिश होती!

कुछ द्वंद्व उठता तो रति रजत के ही हक में बोलती थी। रजत के हितों को सुरक्षित कर लेने के बाद ही वह तारक को उसका हक देती। तारक को खीझ भी होती कि रजत उसके जीवन में चूँकि पहले आ गया था इसीलिए हर चीज़ में ही पहला हक उसी का बनता है। पर उसने रति से अपनी यह मन:स्थिति कभी ज़ाहिर नहीं होने दी थी। पिछले साल वैलन्टाईन डे पर ऐसा ही तो हुआ था। दरअसल दोनों को अंदाज़ नहीं था कि उस वीकैंड पार वैलन्टाईन डे पड़ता था। तारक को किसी काम से रति के शहर आना था और दोनों ने मिलने का कार्यक्रम बना डाला था। रजत से रति की बात हुई होगी तो उसने भुनकर कहा था, "तो वह तुम्हारा वैलन्टाईन है जो उस दिन आ रहा है।" रति के कहने पर कि उसे तो याद भी नहीं था, वह बोला था, "मैं नहीं मान सकता कि तारक ने यों ही आने का बनाया है इस वीकैंड पर।"

रति ने तारक से सारी बात बतलायी तो उसने सोचा था वह खुद फोन पर रजत से कहेगा कि उसे सचमुच याद नहीं था, पर फिर बात बढ़ाने न देने के लिए चुप रह गया था और जाने का प्रोग्राम भी स्थगित कर डाला था। तब उसे दो बातें तकलीफ़ देती रही थी, एक तो यह कि रजत हमेशा उसके सामने प्राथमिकता ले जाएगा, दूसरी यह कड़वी सच्चाई कि रति कभी भी उसकी ज़ाहिरी ज़िंदगी का हिस्सा नहीं बन सकती थी। उसकी कमर में हाथ डाल कर वह कभी किसी से यह नहीं कह सकता था "रति मेरी है।" तब उसे बेहद रश्क होता रजत से। क्या रजत को सचमुच अहसास है कि रति तारक के लिए क्या है, कि वह उसकी ज़िंदगी का केन्द्र, उसकी ज़िंदगी का अर्थ बन चुकी है। यह कोई हल्का फुल्का ठरकपन नहीं, उसकी ज़िंदगी का रेशा रेशा गुँथ गया है रति से। शब्द में अर्थ की तरह समायी है रति उसके अस्तित्व में।

इस गुथन में वह खुद ही घुटता रहेगा हमेशा।
अब रति नहीं है तो वह घुटन और भी कस रही है उसे! क्या अब वह रजत से कह पाएगा? अचानक उसका मन हुआ कि रजत से कह दे, "तुमको मालूम है कि मुझे सचमुच पता नहीं था कि उस दिन वैलन्टाईन डे था, वर्ना ऐसी जुर्रत न करता।" कि वह जानता है, अच्छी तरह समझता है अपनी और उसकी टैरीटरी की परिधियों को! कि रजद शायद कभी जान न पाएगा पर उसने हमेशा एक दोस्त की तरह रजत का, रजत की ज़रूरतों का ख़याल रखा है सिर्फ उपर उपर से सामाजिक उपचार की तरह नहीं, भीतर से किसी दिली रिश्ते से फिर वह रिश्ता चाहे रति के ज़रिये से ही बना हो!

हो सकता है रजत यह सब महसूस करता हो, या न भी करता हो! पर उसके चेहरे पर भी मित्रता का स्वागतमय भाव हमेशा दिखा है तारक को, सिवा उन क्षणों के जब कि सचमुच उन दोनों के बीच "टैरिटोरियल" झगड़े हुए। तब भी वे शायद इंसानी आचार या परस्पर सद्भाव की सीमाओं को कभी लाँघे नहीं।

पर फिर भी तारक का रति के साथ का रिश्ता ऐसा नहीं कि रजत के साथ जिसे बाँट सके। रति उसकी हस्ती का अभिन्न हिस्सा है। वह कोई और कैसे हो सकता है। रजत रति नहीं हो सकता, चाहे उसके कितने ही करीब रहा हो।
उसे किसी न किसी तरह से अपने खत पाने ही है। लेकिन कैसे?
और यही तारक बार बार उलझ जाता है। अपनी यह परेशानी वह किसी के साथ बाँट नहीं सकता! रजत से तो कतई नहीं।
ख़त अगर सचमुच रजत के हाथ पड़ गए तो?

लेकिन रति ने यह भी तो कहा था कि अगर वह नहीं रही तो क्या फ़र्क पड़ता है? पर रजत सचमुच ख़त पढ़ ले तो शायद उसकी पीड़ा पर तब क्रोध और घृणा का कोई विकराल भूत हावी हो सकता है, हो सकता है कि खत पढ़कर रजत रति को खुद से छिटक दे! लेकिन उससे क्या! तब शायद रति और भी तारक के करीब आ जाए! और भी उसकी अपनी हो जाए! सिर्फ़ उसी की समूची!

एक रात पहले उसे ऐसा ही कुछ सपना आया था। रति की मौत की ख़बर के बाद यही उसका याद रह जानेवाला सपना था। वह रति की अंत्येष्टि में गया है और एक अंधेरा-सा बैठकनुमा कमरा है, कमरे में कुछ काग़ज़ बिखरे पड़े हैं, वह एक काग़ज़ उठाता है, वह उसी का रति को लिखा खत है और कई लोग उसके आसपास हैं और वह सोचने लगता है कि कहीं इन लोगों ने भी तो उन्हें नहीं पढ़ा, तभी रजत का चेहरा उसकी ओर बढ़ता है और वह काग़ज़ छिपाने की तरकीब सोचने लगता है, इसी उधेड़बुन में उसकी आँख खुल गई थी तो जिस्म पसीने में नहाया हुआ था।

एक रजत ही यहाँ उसके सबसे करीब है और रजत ही उसे अजनबी-सा लगने लगा है। अब तक उसका रति का संदर्भ था, अचानक उस संदर्भ से कटकर न होने जैसा हो रहा है। तारक को अजीब-सी मानसिक दूरी और भयंकर अकेलापन सा महसूस हुआ। वह यहाँ आया ही क्यों था? रति की नामौजूदगी में कितना बेमानी है उसका यहाँ होना। रजत को भी कितना फिज़ूल सा लग रहा होगा उसका यहाँ उपस्थित होना, जिन लोगों से घिरा है वे तो सचमुच उसके अपने हैं, तारक तो दूर से भी अपना नहीं, मृत से तारक का जो भी नाता रहा हो, उसके किसी दूसरे से तो नहीं था। उसके कॉलेज कामों से लौटे बच्चे भी तारक को पहचानते नहीं थे। तारक ने ही उनकी शक्लों और व्यवहार से अंदाज़ लगाया था और हॉलवे में लगी तस्वीरों से उन्हें पहचान पाया था।

तारक के पास रजत से कहने का कुछ नहीं था। उसका कुछ भी कहना रजत को खल सकता था। उल्टे तारक को लगने लगा कि रजत शायद सोच रहा हो कि अब क्यों ज़ख्मों को याद दिलाने आ गए हो! कुछ भी हो तारक ने उसे पीड़ा तो पहुँचायी ही थी। क्या अब उसका कुछ भी करना रजत के कष्ट को कम कर सकता था? उसने निगाहों से ही अपना दुख बयान कर दिया था, जो शायद रजत ने स्वीकार भी लिया था, शायद एक औपचारिकता की तरह, जैसे वह दूसरे बहुत से जमा लोगों की शोकाभिव्यक्तियाँ स्वीकार रहा था, उससे कुछ अलग नहीं। शायद तारक का वहाँ होना ही रजत को खल रहा हो पर वक्त की नाजुकी की वजह से वह कुछ कहना न चाह रहा हो! तारक एकदम परेशान-सा उठ खड़ा हुआ।

कुछ लोग रजत के गले लग रहे थे, शायद उससे बिदा लेकर जा रहे थे। तारक ने सोचा वह अब कहेगा कि रति के पास कुछ उसके ज़रूरी काग़ज़ात थे, अगर रजत उसे काग़ज़ों वाली जगह पर ले चले तो वह खुद ही देख लेगा। तारक यंत्र की गति से रजत की ओर बढ़ा।

रजत जैसे किसी को देख कर भी देख नहीं रहा था। उसकी आँखें किसी शून्य पर टिकी थी। तारक को लगा उस लोगों के घिराव में, जिसमें उसके अपने अज़ीज़ दोस्त और रिश्तेदार थे, रजत ने उसे कोई विशेष लक्ष नहीं किया। तारक के भीतर अजीब सूनापन-सा आ घिरा, लगा जैसे रति रजत में कहीं नहीं थी।

सिर्फ़ भ्रम-सा हुआ था उसे उसके वहाँ होने का! जैसे कि उसके रति के नाते से वहाँ होने में ही कोई भारी असंगति थी। उसे लगा वहाँ बैठे अजनबी से लोग उसे घूर रहे थे। उसके वहाँ होने पर प्रश्नचिह्न लगा रहे थे। पता नहीं कितने ही अजनबियों से घिर गया था तारक! यहाँ तक कि रति की उस तस्वीर में भी उसे रति नज़र नहीं आ रही थी। वह भी कोई अजनबी छाया थी।

यह दुनिया उसकी नहीं थी। अगर वह रति की दुनिया रही भी हो तो जिस रति को वह जानता था उस रति के लिए भी यह दुनिया अनस्तित्व थी, विसंगत भी। उसने रजत को बहुत सँभलते-सँभलते गले से लगाने की औपचारिकता की। उसे लगा जैसे वह किसी अजनबी को गले लगा रहा था। रति जितने उसके अपने पास थी, उतने और कहीं नहीं, किसी के पास नहीं। दरअसल रति और कहीं नहीं थी, उसके भीतर थी, बस। उसे रति को वही, अपने भीतर ही कहीं संजोये रखना था, भीतर ही खोजना था, भीतर ही तसल्ली करनी थी। किसी और से बाँट नहीं सकता था रति को।

रजत के दोनों कंधों को हल्के से दबाकर उसने धीरे से कहा, "टेक केयर" और मुड़ा तो बिना पीछे देखे बाहर निकल गया।

(१ जनवरी २००४ को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)

संगीत पार्टी

तबले पर कहरवा बज रहा था। सुनीता एक चुस्त-सा फिल्मी गीत गा रही थी। आवाज़ मधुर थी पर मँजाव नहीं था। सो बीच-बीच में कभी ताल की गलती हो जाती तो कभी सुर ठीक न लगता। फिर भी जब गाना ख़त्म हुआ तो सबने खूब तालियाँ बजाई और अचला ने तो तारीफ़ में कहा कि बिल्कुल लता की तरह गाती है। अचला सभी गाने वालों को कोई न कोई नाम ज़रूर दे डालती थी। इससे गानेवाले सचमुच अपने आप को उस गायक के समान मान कर खुश हो जाते थे। फिर अगली पार्टी के लिए उसी फिल्मी गायक का कोई और गाना तैयार कर लेते। इस तरह हर दूसरे हफ्ते होने वाली इस संगीत महफिल में सभी की कोई न कोई उम्दा पहचान बनाती जा रही थी। समीर किशोर कुमार था, जमीला आशा भोसले, सुदेशराज मुकेश था, पवनकुमार मुहम्मद रफी, तथा अमृत सेठी तलत महमूद।

अपने इस दायरे में चूँकि सबकी कोई न कोई हस्ती बनी हुई थी सो शनिवार की शाम को देर तक होने वाली इस पार्टी के बूते उनका पूरा हफ्ता मज़े में कट जाता। कुछ लोग बाकायदा रियाज़ करते। जैसे सब को एक मकसद-सा मिल गया था।

इस बार पार्टी अचला के घर पर थी। दरअसल अचला इन पार्टियों की ख़ास जान थी। वहीं सबसे फोन कर-कर के पार्टी में आने के लिए इसरार करती और इस तरह के फ़ैसले भी करती कि अगली पार्टी कहाँ, किसके घर होनी चाहिए और कौन क्या बना कर लाएगा। देर तक वह इन लोगों से फोन पर बात करती पर सिवाय पार्टी का समय-स्थान मुकर्रर करने के और कोई ख़ास बात न होती।

पति से अलग होने के बाद से अचला का अपना कोई सामाजिक दायरा रहा नहीं था। तब सारा रख-रखाव विवाहित जोड़ों के साथ ही होता था। पति से अलग होते ही जैसे उस पूरे समाज से वह कट गई थी। न केवल वे जोड़े ही अचला से कन्नी काटने लगे थे, वह खुद भी उनके बीच अटपटा महसूस करती थी। उन जोड़ों का पुरुष वर्ग या तो उसे कोई उपलब्ध वस्तु मानने लगा था या फिर वे उसे कोई अनुचित प्रकार का प्रभाव मानकर अपनी पत्नियों से दूर रखना चाहते थे। दूसरी और महिलाओं के लिए वह एक कौतूहल की चीज़ बन गई थी और उनके अपनी दबी इच्छाओं से सुलगते सवालों को सुन-सुन कर अचला के कान पकने को आ गए थे। फिर उस समाज के साथ बनाए रखने का मतलब यह भी था कि पति की उपस्थिति से वह कभी मुक्त नहीं हो सकती थी।

अब वह अपनी मर्ज़ी से गढ़ रही थी अपना समाज। ऐसा समाज जो अचला को ज्यों का त्यों स्वीकार करें। उस पर अपने नियम न लादे, अपनी माँगों का बोझ न डाले। हिंदुस्तानियों के इलावा पाकिस्तानी, बंगलादेशी, गयानी, विविध तरह के लोग थे उसके इस समाज में। ये सभी हिंदी फ़िल्म संगीत का ख़ास शौक रखते थे, सुनने के साथ-साथ गाने का भी। अचला ही इस समाज की मैनेजर थी, उसकी नेता और संस्थापक। वही इसके नियम बनाती थी और उन्हें कार्यान्वित करती थी।

अभिव्यक्ति (www.abhivyakti-hindi.org) से मुफ्त डाउनलोड

अचला को खुद गाने का बहुत शौक था। कभी उसने सिनेतारिका बनने के सपने देखे थे अब सिनेमा के गानों से ही दिल बहला लेती थी। यों गाती तो वह बहुत मामूली थी। बल्कि लगभग बेसुरा ही गाती पर इस महफ़िल में फिर भी उसे सुनने वाले मिल जाते जो यह भी कह देते कि "आज तो आपने पहले से बहुत अच्छा गाया है" और अचला को तसल्ली हो जाती कि वह अब बेहतर गाने लगी है और अगली पार्टी के लिए वह किसी न किसी नए गाने का खूब रियाज़ करती। उसने एक बिजली का बाज़ा ख़रीद रखा था जिसमें लगभग उन सभी पुराने फ़िल्मी गीतों की धुनें उसने भरवा रखी थी जिनको वह गाना जानती थी।

लोग उसके गाने को पसंद करे या न पर उसका व्यक्तित्व खूब प्रभावशाली था। पाँच फूट छह इंच कद। गोरा रंग। खूब मक्खन-सी मुलायम त्वचा। नए फैशन के चटक रंगों के कामदार सलवार-कुरते पहन कर पैंतालीस की उम्र में भी वह तीस-पैंतीस से ज़्यादा की नहीं लगती थी। तभी तो पति इतना ईष्यालु और भयभीत था कि हर वक्त उसे बाँधे ही रखना चाहता था। पर अचला बाँधे जाने पर और भी कसमसाती और रस्सा तुड़ाकर भागने की कोशिश करती। बेटा पैदा होने के कुछ दिन बाद ही उसने पति से कहा था, "मैं तो बोर हो गई घर में पड़े-पड़े। फ़िल्म दिखाने ले चलो न।" सास ने इस बात पर खूब बुरा-भला सुनाया। तब अचला कसमसाती रही, और गुस्सा उस नन्हीं जान पर निकालती रही। कभी उसे अपने दूध से वंचित करके, तो कभी अपने आप से। सास कुढ़ती और पोत को अपने अंक में समेट लेती। कुछ बरस बाद अचला सास से रस्सा तुड़ाकर पति के साथ अमरिका पहुँच गई थी।

यहाँ उसे कोई रोकने-टोकने वाला तो था नहीं। मन होता तो घर पर रहती या फिर निकल जाती। बेटा किसी तरह बड़ा हो ही गया। एक बेटी भी हुई जिसे पालने में बेटे की मदद भी खूब रही। बेटी के होने तक अचला बच्चों की आदी भी हो चुकी थी इसलिए बेटी को माँ की सास के प्रति खीझ उस तरह से नहीं सहनी पड़ी जैसे उसके भाई को। लेकिन पति की शिकायतें दिन-ब-दिन बढ़ती ही रही।

खूब खुली तबियत की थी अचला। आराम से खुलकर चुहल करना, या मर्दों की ठरक का ऐसा मीठा जवाब देना जिसमें न स्वीकार हो न अस्वीकार, न बीवी को चोट पहुँचे न मियाँ को, यह सब सलीका उसे खूब आता था। अकेली जो रहती थी। सलीका न होता तो रोज़-रोज़ मिलने वाले मर्दों से कैसी निभाती। फिर हर किसी मर्द को अपने करीब तो आने दिया जा नहीं सकता। गुस्सा दिखाओ तो भी जल्दी भाग जाते है वे। सो कोई ऐसा ही तरीका अचला ने ईजाद किया था जिससे सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। मर्द उसके ईद-गिर्द मक्खियों की तरह भिनभिनाते थे पर पास जाकर छूने-छेड़ने की हिम्मत किसी की नहीं थी।

यों यह बात नहीं कि कोई ऐसी छुईमुई थी कि पास आने से या छूने से मुरझा जाती। पर छूनेवाला या पास आनेवालों को वह इन पार्टियों से दूर ही रखती थी। उनका वक्त और जगह अलग थी। वह उसके इस समाज का हिस्सा नहीं थे। न ही उनकी रुचि उसके इस समाज में थी। उनके साथ एक दूसरी दुनिया बसती थी, अलग समाँ बँधता था, और अपने अंधेरे-उजालों के साथ वह दुनिया उसके भीतर ही कही सिमटी रहती थी। अगर गलती से कोई इस दुनिया में आ भी टपकता तो उतना फ़र्क नहीं पड़ता था क्योंकि उसका किसी भी रूप में परिचय कराया जा सकता था मित्र-जन, सहयोगी। किसके पास फुरसत थी रिश्ते की तह में जाने की! एक बार आपसी हालचाल बाँटने के बाद पूरी शाम गाने-बजाने में ही तो निकलती। अगर कोई गाना न सुन गप मारने भी लगता तो दूसरे उन्हें घूर कर चुप करा देते। मतलब होता कि आखिर जब गाना सुनने के लिए बुलाया गया है तो ठीक से सुनिए वर्ना जब आपकी गाने की बारी आएगी तो हम भी गप मारने लगेंगे। इस तरह एक दूसरे का लिहाज करते हुए सब घंटो सुनते ही रहते थे एक दूसरे का गाना। बात यह है कि अपने गाने को यह सब लोग बड़ी गंभीरता से लेते थे। नौकरी-धंधे की खुश्क दुनिया को वह यहीं से रस पाकर सींचते थे।

अचला की भी और एक दुनिया थी। उसके दफ्तर की। जहाँ वह एक बैंक मैनेजर थी। यों इस दफ्तर तक, ख़ास तौर से इस पद तक पहुँचने के लिए ज़रूर उसे एक तीसरी दुनिया के नुमाइंदे की मदद लेनी पड़ी थी। पर वह नुमाइंदा बैंक की चारदीवारी में कभी कदम नहीं रखता था। उसकी हस्ती अदृश्य ही बनी रहती थी। शायद इसीलिए इस वक्त जबकि उसके बैंक में खूब खलबली मची हुई थी, वह प्रगट नहीं हो पा रहा था।

जब से वह इस बैंक में आई थी, उस पर एकदम से काम का खूब बोझ डाल दिया गया था। बैंक के वाईस प्रेसिडेंट ने अपने दोस्त की सिफ़ारिश पर अचला को नौकरी भी इसलिए दी थी कि ऐसे प्रभावशाली व्यक्तित्व वाली महिला अपने रौब से इन सारे बहुसंस्कृति वाले कर्मचारियों से काम ले पाएगी। बैंक में पैसा बचाने का दौर चल रहा था। इससे कुछेक कर्मचारियों को निकाल दिया गया था। अचला को ज़िम्मेदारी सौंपी गई थी कि किसी तरह वह इन बचे हुए कर्मचारियों से ज़्यादा से ज़्यादा काम ले ताकि पहले से कम लोग होने पर भी बैंक का काम ढीला न हो।

अचला पूरे जीजान से इस काम में लग गई। उसने देखा कि बैंक के सारे कर्मचारी मूलतः सुस्त थे और काम करने में उनकी कतई रुचि न थी। इसीसे बैंक घाटे में जा रहा था। उसने बैंक के वाईस प्रेसिडेंट से सलाह करके कुछ नए नियम बनाए और उन्हें लागू करने लगी। उसने देखा सब काम पर देरी से आते थे और रजिस्टर में वक्त वही भरते थे जो कि काम पर आने का नियमित समय था। इसी तरह लंच एक घंटे का मिलता था। सब रजिस्टर में एक घंटा ही दर्ज करते जबकि दो-दो घंटे बाद लंच से वापस आते। सब चूँकि ऐसा करते थे इसलिए उनकी मिलीभगत थी। कोई एक दूसरे की शिकायत न करता था।

ऊपर से यों सब बहुत विनीत थे। जो भी अचला कहती वे सुन लेते। बड़ी मुलायमियत से सहमति जताते। ये और बात थी कि करते वही जो खुद चाहते। अचला बहुत कम जान पाती थी कि उनके भीतर क्या-कुछ चल रहा है। चूँकि उसका बाहरी व्यक्तित्व इतना रौबीला, आकर्षक और प्रभावशाली था, बहुत से लोग उसकी सामर्थ्य को कुछ ज़्यादा ही आँक बैठते थे और अकसर उसे इससे लाभ ही मिलता था। अचला के लिए रोज़-रोज़ सबके आने जाने के वक्त पर निगाह रखना मुश्किल था। कुछ दिन तो वह यही सब करती रही। पर इससे मैनेजमेंट के दूसरे देखभाल के कामों में ढील पड़ने लगी।

बैंक कर्मचारियों में एक क्लर्क हिंदुस्तानी भी थी। नाम था भारती। भारती उसे बड़ी जिज्ञासा से टोहती रहती थी। बात होने पर पता लगा कि दोनों एक ही कॉलेज की पढ़ी थी। भारती उम्र में कुछ कम थी पर अचला उससे कहीं ज़्यादा जवान या छोटी लगती थी। अचला ने भारती की आँखों में पढ़ डाला था एक चुपके से उभरती ईर्ष्या को कि कहाँ तो अचला बैक मैनेजर और कहाँ भारती अदना सी क्लर्क। फिर भी दोनों की बात शुरू होती तो होती ही जाती जबकि अचला को अपने मैनेजर होने का या भारती को अपने क्लर्क होने का ख़याल कभी न भूलती। अचला को भारती से बात कर बड़ी तसल्ली मिलती कि एक जन तो यहाँ है जिसे वह पहचानती है और शायद उसके माध्यम से कुछ और भी समझ हाथ लगे। अचला ने एक दिन उसे कह ही दिया कि क्यों न वे दोनों एक दिन लंच साथ करें। भारती तो फूल कर कुप्पा थी। कहाँ तो बैंक मैनेजर कभी उसके होने से भी वाकिफ़ न थे और यह वाली मैनेजर तो उसे लंच के लिए बुला रही है।

अचला जो भी भारती से कहती वह उल्टे अपने-आप को महत्वपूर्ण मानकर खूब खुशी से पूरा करती। धीरे-धीरे कौन कितने बजे आता है और कितने बजे का रजिस्टर में हस्ताक्षर करता है इस सब की सूचना भारती ही अचला तक पहुँचाने लगी। भारती से अचला मित्र की तरह व्यवहार करने लगी थी इसीसे जो भी अचला कहती वह उसमें

कोई उज्र न समझती। यहाँ तक कि भारती रोज़ घर से ही खाना बना कर लाने लगी और दोनों अचला के ही कमरे में साथ बैठकर खाना खाने लगी। अचला इस खाने के घंटे का बड़ी बेताबी से इंतज़ार करती जैसे कि किसी बच्चे को नए मिलनेवाले खिलौने से खेलने का इंतज़ार रहता है। इसी खाना खाने के वक्त ही भारती दफ्तर के फ्लोर पर होने वाली सारी बातें अचला का सुना जाती।

अचला को जैसी जिज्ञासा भारती से दफ्तर के कर्मचारियों के बारे में होती थी भारती को वैसी ही जिज्ञासा अचला के व्यक्तित्व को लेकर। वह ढेरों सवाल पूछती पति, परिवार, बच्चे, नौकरी कैसे मिली। अचला जवाब देती। आखिर कुछ तो कीमत उसे भी चुकानी ही थी भारती की सूचनाओं की। पर अपने बारे में वह खबर देती पूरे सेंसर के साथ। फिर भी उसने इतना तो भारती को बता ही दिया था कि पति से उसका तलाक़ हो चुका है। दो बच्चे हैं, एक बेटी और एक बेटा। बेटी पढ़ती और नोकरी करती है। अलग रहती है। बेटा पहले बाप के साथ रहता था अब नौकरी के बाद वह भी अलग शहर में रहने लगा है। पति कुछ बीमार रहता है इसलिए जल्दी रिटायर होकर अपने घर में ही रहता है। अचला खुद अलग अपार्टमेंट लेकर रहती है।

साथ ही अचला ने मन में सोचा था कि इस महिला को वह अपने घर पर कभी नहीं बुलाएगी। जबकि भारतीने उसे बताया था कि वह भी अच्छा गा लेती है। हर किसी के पास सूचनाओं के टुकड़े ही थे। अगर घर और बाहर के लोग साथ मिल कर बैठ जाए तो टुकड़े जुडकर एक तस्वीर भी बन सकती थी। अचला को लगता कि क्यों वह तस्वीर बनाने का मौका दे। यों ही टुकडों में अधूरापन या गुप्त-रहस्यमय सा कुछ बना रहे तो शायद वह बची रहेगी। बस इतना ही तो चाहिए था उसे। खुद को दूसरों की अपेक्षाओं से बचाकर अपने ढंग से अपनी ज़िंदगी गढ़ना। विवाहित रहते हुए कितना असंभव था अपनी मरज़ी से जीना। हर रोज़, हर छोटी-छोटी आज़ादी के लिए जंग करना पड़ता था। अब अपनी ज़िंदगी और अपने समाज की नियामक वह खुद है!

.....

आज की महफ़िल में अचला की बेटी नीली भी शामिल थी। यों तो नीली माँ से बहुत अलग किस्म की लड़की थी। उसे न तो हिंदुस्तानी संगीत की समझ थी न रुचि। फिर भी चूँकि पार्टी आज अचला के यहाँ थी इसलिए वह और उसका ब्वायफ्रेंड वहाँ आए हुए थे ममा की मदद करने। नीली को जिस कंपनी में नौकरी मिली थी यह लड़का भी वही काम करता था। नीली उसे पसंद थी और अचला को वह लड़का नीली के लिए ख़ास तौर से इसलिए पसंद था कि बहुत शरीफ लड़का था और जो कुछ भी नीली कहती वह उसे करने को तैयार रहता था। जैसे कि अभी उसके कहने से वह उसकी माँ की मदद करने इस गाने-बजाने की महफ़िल में आ गया था। न उसने कुछ सुना, न किसी मेहमान से बात की। बस नीली के पीछे-पीछे लगा काम करता रहा। कभी ग्लास उठाने, तो कभी ड्रिंक सर्व करने, तो कभी खाना लगाने के तरह-तरह के काम बेचारा नीली को खुश करने के लिए, जो कोई भी कुछ कहता, बिना चूँ किए कर देता।

नीली और उसके दोस्त एरिक, दोनों को ही अचला पसंद थी। नीली ममा की शुक्रगुज़ार थी कि उन्होंने उसे खुली छूट दे रखी थी साथ ही वह खुद भी ममा की अपनी आज़ादी के हक में थी और तलाक के वक्त उसने पापा के बजाय ममा का ही साथ दिया था। ममा के व्यक्तित्व की ज़रूरतों के प्रति नीली के मन में हमदर्दी थी। न्यूयार्क में पली-बढ़ी नीली तो खुले आम यह महसूस करती और कहती थी कि पापा का बस चलता तो माँ बेटी दोनों को ही ताले में बंद कर के धर देते।

खाना लगने की देर थी कि गाना बजाना भूल सब खाने की मेज़ के आसपास आकर इकठ्ठे हो गए। कितने किस्म की तो चीज़ें बनी थी। अचला ने खुद चाट और रसमलाई बनाई थी। बाकी सब लोग कुछ न कुछ बनाकर साथ लाये थे मुर्ग मखनी, कीमा मटर, गोभी-आलू, बिरयानी, पराठे वगैरह-वगैरह।

यों अचला ने तो सोचा था कि आज का सारा खाना वह खुद ही बनाएगी क्योंकि वह अपने बेटे की शादी की पार्टी करना चाहती थी पर शरीर में वैसा उल्लास और उर्जा नहीं ला पायी थी सो उसने सोचा कि वह अकेली क्या बनाएगी, जैसे सब मिल कर बनाते हैं इस बार भी वैसा ही चलने दो। एक तरफ़ उसे लगता रहा कि उसे परवाह नहीं कि पार्टी हो या न, आखिर बेटा तो उसके साथ है नहीं। दूसरी तरफ़ भीतर कहीं उठता रहता कि बेटे की शादी का शगन तो कर ही लेना चाहिए! फिर संगीत पार्टी भी शादी के ईदगिर्द उसी के यहाँ पड़ रही थी, दोनों काम आराम से साथ-साथ हो सकते थे। पर आज मन बुझा-बुझा-सा था।

यों भी दफ्तर में जो नियम लागू करने में समय और ताक़त लगती थी उससे वह मानसिक तौर पर बड़ी थक जाती थी। भारती की सूचनाओं का फ़ायदा काफी हुआ था और इससे वह दफ्तर में कड़ा अनुशासन रखने में भी सफल हो गई थी। दो एक बार तो उसने कर्मचारियों को रंगे हाथों झूठा वक्त भरते पकड़ लिया था। वाईस प्रेसिडेंट ने तो कहा कि वह उनके खिलाफ़ फाइल तैयार करे ताकि इस तरह उनको बैंक से निकाला जा सके।

यों अचला को खुद इन लोगों से कोई लेना-देना नहीं था, दूसरे की नौकरी छीनने का ज़िम्मेदार बनने में उसे झिझक होती थी, पर अपनी नौकरी को बरकरार रखने के लिए उसे यह सब करना ही था। बैंक में उस के अधीन लोग अब उसे संदेह की निगाह से ही देखने लगे थे और भारती के सिवा और किसी भी मातहत से उसकी खुली बात न होती थी। पर साथ ही मन में इस ताक़त का उसे सुख भी मिलता था। ख़ास तौर से भारती तो उसकी इस समर्थन से बेहद प्रभावित थी और उसे और भी ज़्यादा दफ्तर की गप्पे सुना डालती थी।

यों भारती का कौतूहली मन अचला के करीब आने के लिए कुछ भी करने को तैयार रहता था पर साथ ही अपनी दी सूचनाओं की ऐवज में यह भी जानना चाहता था कि अचला की निजी ज़िंदगी किन तत्वों से बनी है, दूसरे पुरुषों की क्या जगह है वहाँ, आखिर अचला तो तलाकशुदा है, सो क्या अचला दूसरे पुरुषों के साथ शारीरिक संबंध रखती है? अचला ने बड़े आराम से कह दिया था, उसमें क्या है? क्या भारती नहीं रखती? आखिर चालीस-पैंतालीस की उम्र में आते-आते तक कोई न कोई दूसरे पुरुष ज़िंदगी में आ ही जाते हैं।

अचला को अचंभा हुआ था जब भारती ने उसे कहा था कि अपने पति के सिवाय उसने कभी किसी पुरुष को खुद को छूने भी नहीं दिया। तब अचला ने यह भी सोचा कि भारती में सच कहने की हिम्मत भी नहीं होगी। आम हिन्दुस्तानी औरते ऐसी बातें किसी से नहीं कहती। भारत में रहते हुए अचला भी शायद न कहती। पर इतने सालों से यहाँ रहते वह इस मामले में खुल गई है क्योंकि उस की अमरीकी सहेलियाँ खुलकर अपने पुरुष मित्रों के बारे में बात कर लेती है।

पर कह देने के बाद अचला पछतायी थी क्योंकि भारती अपने हावभावों से कही उसे यह सुना गई थी कि अगर वह बैंक मैनेजर है तो सिर्फ़ इसी वजह से। वर्ना भारती और अचला में सच में कोई फर्क़ नहीं। दूसरी तरफ़ अचला को यह भी लगता कि भारती जैसी दकियानूसी औरते वही हिंदुस्तानी नारी की पवित्रता की लीक को पकड़े न कभी खुद

आगे बढ़ेगी न दूसरों को बढ़ने देगी। शायद उसकी मानसिक थकान की वजह यह भी रही होगी। भारती उसके भीतर के एक ऐसे अंश को छेड़ जाती थी जो अभी भी हमेशा दुखता रहता था और वह था अचला का अपने परिवार और ख़ास तौर से अपने पति और बेटे के साथ संबंध।

अचला ने अपने पति को खुद छोड़ा था। पर जिस तरह की बंदिशे उसके पति ने उस पर लगा रखी थी, अचला का तो जीना मुहाल था। कभी रात को देर से आओ तो सवाल-जवाब। कभी कहीं बाहर जाओ तो डाँट-फटकार। पति चाहता था कि अचला बस उसकी और उसके घर की बनी रहे। अचला को अपना-आप भी चाहिए हो सकता है यह बात उसकी समझ में नहीं आती थी।

वह बार-बार उसे नहीं सुनाता रहता, "तू अब वैसी नहीं रही। यहाँ आकर बहुत बदल गई है।"
अचला चिढ़ जाती, "वट इ यू मीन? मैं अभी भी वहीं हूँ। बस वहाँ कुछ करने का मौका नहीं मिलता था, न टाईम होता था। यहाँ फ़ुरसत भी है और मौका भी।"

घर की बंदिशे अचला की बर्दाश्त से बाहर थी रोज़-रोज वही दिनचर्या, उब, एकरसता, बेचैनी। तभी अचला ने एक दिन नौकरी करने का फैसला कर लिया था। बस नौकरी के बहाने बाहर निकलती तो पति का सामना करने से बचने के लिए और भी देर से घर लौटती। रोज़-रोज़ तक्रार शुरू हो गई। पति बोला नौकरी करने की ज़रूरत नहीं। घर पर बैठो और बच्चों की देखभाल करो।

पर बच्चे तो बड़े हो चुके थे। देखभाल का मतलब था दिन भर उनका इंतज़ार, चिढ़न और कुढ़न। आखिर अचला ने घर और बच्चों सभी को एक साथ छोड़ दिया। अब अचला की अपनी स्वतंत्र ज़िंदगी थी पर भारती जैसे लोग उसे बार-बार अपने अतीत की ओर खींचने लगते। यों यहाँ की ज़िंदगी में भारती जैसे लोग एकदम फालतू थे, उनसे रखे-रखाये बिना भी आराम से काम चलाया जा सकता था। आखिर ये लोग उसके वर्तमान जीवन में कोई भी अहम भूमिका अदा नहीं करते। बस एक नास्टेल्जिया-सा ही तो है भारती का साथ! जब चाहे उसे झटका जा सकता है। हमेशा के लिए तो उस नास्टेल्जिया में बहा भी नहीं जा सकता।पर भारती को वह चाहे कितना दोष देती रहे जख्म को छेड़ देने के लिए। ज़ख्म तो उसका अपना ही है।

पति को छोड़कर एक बेहतर ज़िंदगी की सोची थी। पर कोई भी तो पुरुष ऐसा नहीं मिला जो उसके लिए सही हो। जिससे मन भी मिले और उसकी अपनी माँगे भी वह पूरी कर सके। ऐसा पुरुष जो उसे मुक्ति भी दे सके और प्यार भी। उसके पहले पति की तरह, उसकी हर हरकत, उसकी हर चालढाल को मात्र संदेह से ही न देखता रहे।

वह सुंदर है इसलिए वह किसी एक से प्यार नहीं कर सकती, यह मानना कितना गलत है। यह सच है कि उसे पुरुषों का अपने प्रति आकर्षण सुख देता है और वह उन्हें इससे हटाना नहीं चाहती, पर वह उनके प्रति समर्पित भी नहीं होना चाहती। अगर समर्पित होना है तो उस किसी विशेष के प्रति ही होगी। हर किसी के प्रति तो नहीं। क्या कोई भी पुरुष उसके मन की इस स्थिति को समझकर उसे अपना बना सकेगा? उसे प्यार दे-ले सकेगा!

पर जब भी कोई पुरुष उसके निकट आया, उसे संदेह की निगाह से ही देखता। अचला का अपना मन हिंदुस्तानी पुरुषों से ही मिलता था और उसे मुक्ति के साथ प्यार देने वाला कोई भी पुरुष नहीं मिला। यह बात नहीं कि वह एक से अधिक पुरुषों के साथ शारीरिक संबंध बना कर रखना चाहती थी, पर मूल रूप से मुक्ति की माँग ज़रूर करती थी

कि किसी की संपत्ति बन कर नहीं रहना है उसे। शायद इसीसे पति से तलाक के बाद से ज्यों-ज्यों वक्त गुज़रता जा रहा था, उसकी किसी सही पुरुष से मिल पाने की उम्मीद धुंधली पड़ती जा रही थी और अकेले रह जाना उसकी ज़िंदगी की सच्चाई बनती जा रही थी।

खाना खाके सब फिर से गाना गाने बैठ गए थे। सब कह रहे थे कि अब अचला की बारी है। उसे एक गाना तो गा ही लेना चाहिए। अचला का मन भरा-सा था। उसने बहुत दर्दभरा एक पुराना फिल्मी गीत गाया। किसी ने गौर नहीं किया उसकी आँखें सच में भरी हुई थीं। सबने कहा, "आज तो वाकई में अचला ने बहुत ज़ोरदार गाया है।"

अचला का मन हो रहा था अब सब चले जाए। इनमें से किसी को नहीं मालूम था कि उस पर आज क्या बीत रही थी। उसका खुलापन, हँसी-मज़ाक, उत्साह से गले मिलना या गाल पर चूमना, यही तक का तो नाता था इन सब से। इससे ज़्यादा न वह खुद आगे बढ़ती थी न दूसरे! बेटे की शादी का जो भी मतलब इस या उस या किसी भी समाज में हो, अचला के लिए तो वह एक ज़ख्म बनता जा रहा था और वह यह ज़ख्म किसी को भी दिखाने की हिम्मत नहीं रखती थी।

इधर दफ्तर में हालात बिगड़ गए थे। सब कर्मचारियों को अंदाज़ा हो गया था की भारती ही उनके खिलाफ़ अचला के कान भरती है। उन्होंने आपस में मिलकर मीटिंग की जिसमें भारती को बाहर रखा गया और इस मीटिंग में अचला के खिलाफ वाईस प्रसिडेंट को खत लिखा गया कि वह उन्हें स्कूल के बच्चों की तरह अनुशासित करना चाहती है। उन पर देर से आने के झूठे इल्ज़ाम लगाए गए हैं। दफ्तर का माहौल काम करने लायक नहीं रहा। उनका ऐसे कड़े अनावश्यक अनुशासन में दम घुटता है। इस बारे में कुछ किया जाए। वर्ना वे सब मिल कर यूनियन तक अपनी शिकायतें ले जाएँगे और आखिरी दम तक लड़ेंगे। वाईस प्रेसिडेंट ने खत दिखाते हुए अचला से इस बारे में बातचीत की थी और हल ढूँढने की हिदायत दी थी। उसका कहना था, "मुझे नहीं पता था कि तुम इस तरह के सख्त नियम लागू कर रही हो। मैं इस मामेले में कुछ नहीं कर सकता। तुमको ही कुछ न कुछ हल खोजना होगा वर्ना तुम्हें त्यागपत्र देना पड़ सकता है। कुछ सोच समझ लो फिर मुझसे डिस्कस करना।"

अचला ने तो सोचा था कि ऐसे ऊँचे स्तर की नौकरी मिल गई है तो उसकी ज़िंदगी सुधर गई। दब कर काम करेगी और शामों को मज़े करेगी। पर यह नौकरी तो मुश्किल से साल भी नहीं गुज़ार पाई। अब फिर से कहाँ खोजेगी काम? इतनी मुश्किल से तो यह नौकरी मिली थी। कहाँ से देगी अपार्टमेंट का किराया? और रोज़मर्रा के खर्चे? पर अचला का कष्ट शायद इतना ही नहीं था। उसके भीतर लगातार एक संवाद चला जा रहा था। गानों के बीच वक्फा पड़ा तो वह फिर से यह संवाद सुनने लगी थी,

"अरे हमें तो पता ही नहीं था कि आपका बेटा भी है! कितना बड़ा है।"
"आप तो इतनी यंग लगती है। हम सोच ही नहीं सकते कि आपका शादी लायक बेटा भी है। क्या सच में आपका अपना ही है!"
"अपना नहीं होगा तभी तो शादी में गई नहीं।"
"सच! बेटे की शादी पर आप नहीं गईं?"
और अचला उन अदृश्य आवाजों को जवाब देती रही, "क्या करूँ! छुट्टी ही नहीं मिली। तभी तो आज उसी के लिए पार्टी कर रही हूँ।"
"बेटा बहू कहाँ हैं?"
"वे लोग भारत से ही सीधे हवाई गए हैं, हनीमून के लिए।"

यों शादी पर नीली भी नहीं गई थी। पर नीली का कहना था कि अगर ममी नहीं जाएगी तो वह भी नहीं जाएगी। यों भी इसे अपने हिंदुस्तानी रिश्तेदारों के गोलमोल सवालों का जवाब देने में बहुत तकलीफ़ होती थी। उसे कभी पता नहीं चलता था कि वह सही कर रही है या गलत। वह जो भी कहती, उसके मतलब से अलग अर्थ तो लगाए ही जाते थे क्योंकि बाद में उसे ममी या पापा से यह ज़रूर सुनना पड़ता था, "नीली ऐसे नहीं कहते।" "ठीक है तुम्हारा मतलब यह ज़रूर रहा होगा पर यहाँ पर इस तरह नहीं कहा जाता।"

और अचला यह किसी से नहीं कह पाएगी कि उस के बेटे ने संदेस भिजवाया था कि उसकी माँ शादी पर नहीं जाएगी। अगर माँ गई तो वह शादी करेगा ही नहीं। वह नहीं चाहता कि "उसकी पत्नी पर उसकी माँ का साया पड़े" और ये शब्द अंदर ही अंदर खाये जा रहे थे अचला को।

यह सच था कि बेटे को इस बात पर आपत्ति थी कि ममा पापा को छोड़ रही है। उसका यह भी कहना था कि पापा तो बीमार रहते हैं इसलिए ममा उनकी देखभाल नहीं करेगी तो और कौन करेगा। उसने ममा को यह धमकी भी दी थी कि ममा ने पापा को छोड़ दिया तो वह कभी उनसे बात नहीं करेगा। कभी कभार बात फिर भी हो जाती थी। पर वह कहता रहता कि ममा स्वार्थी है। उन्हें पापा से ऐसा बर्ताव नहीं करना चाहिए आखिर वे उनके पति है। रिश्तों में इस तरह से मनमानी करना ममा को शोभा नहीं देता। वे जानती है कि पापा तो उन्हीं पर निर्भर करते हैं। दिल के मरीज़ है। किसी न किसी को तो पास होना चाहिए। ये नहीं सोचती कि वे कितने अकेले रह जाएँगे?

शादी ब्याह के मामले में तो गिले-शिकवे ख़त्म हो जाते हैं। पर यहाँ तो वह गाँठ ही डाल कर बैठ गया है। किस ने सिखा-पढ़ा दिया ऐसा? द्रादी ने, या बाप ने! ऐसी अवमानना। ऐसा प्रहार! इतनी बड़ी सज़ा! पता नहीं क्या कुछ कहा होगा अचला के खिलाफ़! वर्ना इस तरह से माँ का अस्वीकार! क्या उसको माँ की ज़रूरत महसूस नहीं हुई होगी! क्या सच में माँ को तिरस्कृत करके वह चैन से बैठा रह सकता है! क्या नयी पत्नी माँ के स्थान को इतना भर देगी कि माँ को देखने तक की ज़रूरत नहीं महसूस होगी! भूल जाएगा माँ को!

दुनिया भर के रिश्तेदार तो इकठ्ठे हुए उसकी शादी में। बस एक माँ ही ज़िसे कि सबसे पहले, सबके आगे, सबके उपर होना चाहिए था! क्या कभी नहीं मिल पाएगी अचला अपने बेटे-बहू से! सच में इतनी बुरी है वह, माँ का साया नहीं पड़ने देगा पत्नी पर! क्या सच में ये उसी के शब्द हो सकते हैं! अचला का मन किसी छीजे हुए पुराने कपड़े-सा हो रहा था। ज़रा-सा भी तानो तो फटता जाता था।

नीली माँ की पीड़ा को समझती थी और बस नीली ही समझती थी। सिर्फ़ उसी ने ममा का घुटना और तड़पड़ाना देखा था। बचपन से देखती आ रही थी। पापा की माँगों का तो कभी अंत ही नहीं था। भईया भी तो बिल्कुल पापा के जैसा। ममा को तो जैसे घर का नौकर बना कर रखा हुआ था। बस इनकी ज़रूरते पूरी करते रहो, इनके आगे-पीछे घूमते रहो। अगर न घूमो तो बस स्वार्थी है। जैसे कि हमारा तो जन्म ही इनकी देखभाल के लिए हुआ है। बस एक ममा ही थी जो नीली को पापा और भईया के नाजायज़ फ़ायदा उठाने से बचाती थी। ममा ज़ोर देती कि बेटी और बेटे की परवरिश में फ़र्क नहीं करेगी। पर पापा और दादी से इस बात पर बार-बार लड़ाई हो जाती। बस यही सुनाया जाता कि लड़की बिगड़ रही है। ममा बिगाड़ रही है!
जमीला ने एक पुराना फिल्मी गाना शुरू किया –

"मेरे बन्ने की बात न पूछो, मेरा बन्ना हरियाला है मेरे बन्ने के रूप के दम से चारों तरफ़ उजियाला है।"

अचला को अचानक किसी ने ढोल-बैंड से लदी-सजी बारात में पहुँचा दिया था। घोड़ी पर बैठा उसका इकलौता बेटा! सेहरे के फूलों से ढका कोमल पर मज़बूत चेहरा। सफ़ेद अचकन में राजकुमार जैसा। रिश्तेदार, दूर के नाते, पुरानी सहेलियाँ। नाच, गाने, गप्पे, मिठाइयाँ, पकवान और गिले शिकवे!

जमीला ने गाना बंद किया तो मानो अचला को फिर से ज़मीन पर लाकर पटक दिया। सहसा उसे अपनी छूटती हुई नौकरी का ख़याल आ गया। अगर वह भारती को दफ्तर से निकाल दे तो शायद उसकी अपनी नौकरी बच सकती है। भारती को इतना करीब ले आना गलत बात थी। वाइस प्रेसिडेंट से इस बारे में बात करेगी। पर बेचारी भारती!
तो अचला क्या करे? फिर से नयी नौकरी की तलाश?
नहीं! क्या जाने इस स्तर की नौकरी मिले या न?

महीना तो देखते-देखते गुज़र जाता है। कहाँ से लाएगी किराया हर महीने। कहीं से कुछ मिलने का आसरा नहीं। भारती को तो क्लर्की कहीं भी मिल जाएगी। अचला मुस्कुरायी। पर उदासी मिटी नहीं थी। ये सब लोग गाने गा कर चले जाएँगे। क्या ये लोग भी इसी तरह जीते होंगे? आज नौकरी है तो कल नहीं। सब पर वही तलवार लटक रही है।

पर अचला खुद किसी के अंदरूनी मामलों के बारे में कुछ नहीं जानती। सब हँसते-खुश होते आते हैं, वैसे ही लौट जाते हैं। किसी के भीतर से तो उसका कोई सरोकार नहीं! न ही उसे अपने से इतनी फ़ुरसत मिलती है कि दूसरों के गरेबान में झाँक सके! इनमें से भी कोई नहीं जानता कि अचला का भीतरी संसार कैसे चिरा जा रहा है। यहाँ से छुट्टी हो गई तो शायद उसे भी कहीं क्लर्क की नौकरी ही मिले।

हर बार तो तुक्का नहीं लगता। पर यह तुक्का उसके लाभ के लिए था या कि बैंक प्रेसिडेंट के। उल्लू तो वही बनी! पहले उसके हाथों दूसरों को निकलवाया, फिर उसी का पत्ता काटने की साज़िश! पर इतनी कच्ची गोलियाँ तो वह भी नहीं खेली। कुछ न कुछ जुगाड़ तो करना ही होगा। तो कैसे बचाएगी खुद को। खुद को बचाकर रखना अब भी उतना ही मुश्किल क्यों है? सिर्फ़ हमलावर ही बदले हैं! क्या कहना होगा वाईस प्रेसिडेंट से। बहुत सोच समझ कर इस की तैयारी करनी होगी। अपने उसी मित्र की सलाह लेगी जिसने यह नौकरी दिलवायी थी।

.....

अचला ने सारी योजना सफाई से समझा दी तो वाईस प्रेसिडेंट ने उसकी सूझ की दाद दी और कहा, "अरे आपने तो बैंक की और भी बचत करा दी। मैं प्रेसिडेंट से आपकी तनखा बढ़ाने के लिए रिकमैंड करूँगा।"

अचला ने पल भर को चैन की सांस ली थी कि चलो उसकी नौकरी तो बच गई पर मन फिर भी उद्विग्न बना रहा।
अगले दिन ऑफिस में गई तो भारती उसके कमरे में आकर भभक पड़ी, "क्या करूँगी मैं? कहाँ जाऊँगी। इन लोगों ने तो मुझे निकाल दिया है। सब ने कह दिया है कि वे ऐसे विश्वासघाती के साथ काम नहीं कर सकते। मेरी कान्फीडेंशल रिपोर्ट भी ख़राब कर दी है। मेरा भला क्या कुसूर है इसमें? मैं तो जो आप पूछेगी वही बताऊँगी। मैंने कोई जानबूझ कर किसी के खिलाफ़ आपके कान तो नहीं भरे।"

अचला चुपचाप भारती की बात सुनती रही।
"आप मेरा कुछ कीजिए। मैं तो फालतू मे मारी गई। देखिये मेरे पति के पास भी आजकल ठीक नौकरी नहीं है। बच्चे अलग पढ़ रहे हैं। प्लीज़!"
उसने भारती के आरोप से बचने के लिए कहा, "मैं क्या करूँ? मेरी तो अपनी नौकरी को ही ख़तरा है।"
फिर बड़ा अपनापन जताते हुए बोली, "इस दफ्तर में हमी दोनों हिंदुस्तानी है। इसीसे किसी को समझ नहीं आता हमसे कैसे पेश आए। सो डर के मारे अब हम दोनों की ही छुट्टी किए दे रहे हैं। खैर मैं बात करूँगी, पर मुझे उम्मीद नहीं कि मेरी सुनेंगे।"

अचला को भारती पर तरस भी आ रहा था। साथ ही ग्लानि भी कि वह उस को झूठा आश्वासन दे रही थी जबकि उस को नौकरी से निकलवाने की साजिश खुद अचला को ही करनी पड़ी थी। पर करती तो क्या! या तो उसे खुद निकलना पड़ता या भारती को वर्ना दफ्तर के दूसरे कर्मचारियों का विश्वास कैसे जीतती!

रात बहुत बीच चुकी थी। लोग गा-गा कर थक चुके थे। फिर भी उत्साह कम नहीं हुआ था इसलिए थके फटे गलों से मिलकर पुराने लोकप्रिय फिल्मी गीत समवेत स्वर में गा रहे थे, "बचपन के दिन भी क्या दिन थे, उड़ते फिरते तितली बन के।"
अचला विद्रूप से मुस्कुरायी। उड़ती-फिरती तितली कितनी देर तक सुरक्षित रह पाती होगी! कोई न कोई झप्पट्टा मारेगा ही!
किसी ने कह दिया, "अचला आज तुम्हारा जोश कहाँ चला गया। ये वाला तो मिल कर गाओ।"

फिर सब ने गाना शुरू कर दिया था, "राजा की आएगा बारात, रंगीली होगी रात, मगन मैं नाचूँगी।" गान चलता रहा। अचला बचपन, यौवन और अपने मौजूदा हालात के साथ गाने का अर्थ जोड़ती खामोश ही रही। शामिल नहीं हो पाई गाने में।
अचला उठकर रसोई में आकर बर्तनों का काम करने लगी। उससे गाया नहीं जा रहा था। नीली ने किसी से कहा, "दो तो बज गए। मुझे तो सुबह काम पर जाना है।"
"इतवार को भी?"
"हाँ एक ख़ास प्रोजेक्ट चल रहा है।"

वह उठी तो पार्टी उखड़ गई। लोग उठने लगे। अचला रसोई से निकल कर दरवाज़े पर आ कर खड़ी हो गई। अगर वह किसी से शादी का ज़िक्र न ही करती तो शायद बेहतर होता! पार्टी तो हो ही रही थी। उसे शादी के मौके से जोड़कर वह क्या हासिल करना चाहती थी? बेटे के प्रति अपने कर्तव्य का निभाव! या कि बेटे के नाम पर शादी का

उत्सव करके उस की शादी में सम्मिलित होने की मन की उड़ान या मन की तसल्ली! कि उसने नहीं बुलाया तो न सही! पर माँ के हक से कोई शादी का उत्सव करने से तो रोक नहीं सकता!

यह सब उस बेटे के लिए जो इसलिए उससे तोड़ चुका है कि उसने अपने पति को क्यों छोड़ा? या यह बेटे का दबा आक्रोश था और अचला की कोई दबी अपराध भावना थी। जिसके अनचाहे आगमन ने उसके यौवन को चारदीवारी में बाँधकर कसमसा दिया था, अब जब वह फूल बन कर महक उठा तो अचला भी अपनी फुलवारी पर गर्व से सर उठा कर ताकने लगी थी। पर उस फूल का मालिक अब कोई और बन बैठा था। अचला दूर खड़ी जैसे पराये माल को ललचायी आँखों से निहार रही थी।

लोग बेटे की शादी की बधाई दे-दे कर रुख़सत होने लगे थे। अचला उन्हें धन्यवाद भी करती जा रही थी पर मन ऐसे हो रहा था कि जैसे मसल-मसल कर किसी ने कूचे में फेंक दिया हो। उसकी सारी हस्ती ऐसा महसूस कर रही थी जैसे वह किनारे का कोई पेड़ हो जिसके आसपास से कितनी ही नदिया गुज़र जाती हो पर वह वैसे ही ठूँठ खड़ा हो। कोई भी पानी उसे नहीं छूता।

(१६ नवंबर २००३ को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)

सड़क की लय

नेहा ने सुना पापा कहे जा रहे थे - "सड़क की भी एक लय होती है। इसे सुनो, पहचानो और उसी हिसाब से गाड़ी चलाओ। जब तुम मैनहैट्टन में चलाती हो तो यहाँ सैंकड़ों गाड़ियाँ एक साथ चलती हैं। बार-बार लाल बत्ती होने से रुकना पड़ता है, इसीलिए गाड़ी की स्पीड खूब धीमी रखनी चाहिए ताकि घचके से ब्रेक लगाने की ज़रूरत ना पड़े।"

परसों नेहा का ड्राइविंग का इम्तहान है। यों तो नेहा ड्राइविंग स्कूल में कार चलाना सीखती रही है पर एक बार टेस्ट में फेल होने के बाद वह काफी नर्वस है, और पापा ने कहा कि वह इसका कुछ अभ्यास करवा देंगे। पापा की तो ड्राइविंग बढ़िया होती ही है। कितने बरसों से तो चला रहे हैं वे गाड़ी।

छोटी थी तो ज़िद करती थी गाड़ी चलाने की! पर तब पापा कहा करते थे, बड़ी हो जाओ तब सिखाएँगे तुमको गाड़ी। पर कालेज जाने पर उसे वक्त ही नहीं मिला। अब तो नौकरी भी शुरू हो गई और उसे होश आया है गाड़ी सीखने का।

तेईस बरस की उम्र में गाड़ी चलाना सीख रही है। सबर्ब में रहने वाले लड़के लड़कियाँ तो सोलह साल के होते ही चलाने लगते हैं। पर नेहा तो मैनहैट्टन में रहती है। यहाँ गाड़ी की वैसी ज़रूरत पड़ती ही नहीं वर्ना वह भी पहले सीख जाती। भैया भी तो लेट सीखा था, नौकरी लगने पर ही। ममा तो आजतक नहीं सीखीं। तो इतनी कोई बात नहीं देर से सीखने में।

पर नेहा अब तैयार है हर चीज़ के लिए। यों नेहा हर काम सीखने के लिए वक्त से पहले तैयार रहती है। उसके स्कूल की टीचर भी यही कहा करती थी। यही बात है कि उसे हर काम आसान लगा करता था। क्लास में वह हमेशा आगे ही रही। पर उसके इसी गुण को लेकर ममी की सहेली ने नेहा को प्रिकाशस बच्ची कहा था यानी कि वक्त से पहले ही "प्रिपेयर्ड" । वह गुण की तरह नहीं बल्कि एक दोष की तरह ही सुनाया गया था यों बात भी कुछ अजीब-सी हो गई थी। तब वह ग्यारह बरस की रही होगी। क्लास में जैनी ने सब लड़कियों से पूछा था तुम में से कौन कौन वर्जिन है।

नेहा को वर्जिन का मतलब ही नहीं पता था। पर उसने देखा कि जिस लड़की ने भी कहा कि वह वर्जिन है उसका जैनी और उसकी सहेलियों ने खूब मज़ाक उड़ाया था। ना ही नेहा की हिम्मत पड़ती थी अपनी सहपाठियों पर अनजानापन ज़ाहिर करने की। पर घर आकर उसने पहला काम यही किया कि ममी के अपनी सहेली के साथ बैठे होने पर भी ध्यान न दे टपककर सवाल पूछ लिया, "ममी वर्जिन क्या होता है?"

ममी अभी सवाल के प्रति सतर्क भी नहीं हुई थीं कि नेहा ने जोड़ दिया, "मैं तो वर्जिन नहीं हूँ न ममी?"

इससे पहले कि ममी के अवाक चेहरे पर कोई हरकत होती ममी की सहेली बोल उठी थीं, "माई गॉड, कितनी प्रिकाशस बच्ची है। मुँह से दूध निकला नहीं कि वर्जिनिटी के सवाल उठने लगे। भई अभी तो तुम्हारे पढ़ने खेलने की उम्र है। यह सब जानकर करना भी क्या है?

ममी ने मानो होश में आते हुए कहा था, "नेहा तुम ते इतनी अच्छी इतनी अकलमंद बच्ची हो तुम्हें इन सब बातों में नहीं पड़ना चाहिए। ऐसी अमरीकी लड़कियों की संगत में पड़ो ही ना। बस अपना फोकस पढ़ाई पर ही रखो।

अपनी नज़र में आज भी नेहा उतनी ही भोली या समझदार थी जितनी कि सवाल पूछने से पहले लेकिन उसे लगा कि सवाल मात्र पूछने से ही वह ममी पापा की नज़र में कुछ और हो गई थी। तब से नेहा को लगा कि ममी पापा को वह सबसे प्यारी तभी लगती है जबकि वह भोली नन्हीं बच्ची बनी रहती है। जिसे कुछ नहीं मालूम दुनिया दीन का। पापा बेहद खुश होते जब वह तोतली ज़बान में हिन्दी में बतियाती।

पर जहाँ स्कूल के काम का सवाल था वे उससे पूरी बल्कि सामान्य से ज़्यादा परिपक्वता की उम्मीद करते। उसे याद है कि एक बार उसके इम्तहान में नम्बर कम आए थे तो उन्होंने कहा था, "डोंट एँड अप बिइंग मेच्योर यू मस्ट एक्सेल इन योर स्टडीज़।"

अब इतने बरसों बाद भी परिपक्वता या अपरिपक्वता की वह द्विविधा शायद सुलझी नहीं दिखती। किन चीज़ों में बढ़िया हो जाना चाहिए और किन में नहीं इसका माप तोल चलता ही रहता है। एक बार गाड़ी चलाना सीखते-सीखते वे लोग मैनहैट्टेन को दाएँ बाएँ से घेरने वाली हाईवे पर आ गए थे। पर नेहा अभी भी धीमी गति से ही चला रही थी। पापा बोले जब तुम हाईवे पर चलती हो ते स्पीड तेज़ रखनी होती है। सड़क भी खूब चौड़ी होती है और लाल बत्तियाँ भी नहीं होतीं। साथ ही दूसरी कारें भी इतनी तेज़ी से चल रही होती हैं कि अगर तुम धीमा चलाओगी तो सारे यातायात में व्यतिक्रम और गतिरोध पैदा हो जाएगा। इसी से कह रहा हूँ कि सड़क की लय को सबसे पहले समझना चाहिए। तभी तुम अच्छी और सेफ ड्राइवर बन सकती हो।

नेहा अब बहुत-सी उन चीज़ों के लिए भी तैयार है जिसे पापा जानते समझते हुए भी चर्चा से बचते आए हैं।
नेहा का महसूस होता है कि ममी पापा इस बारे में ही स्पष्ट नहीं है कि उनकी बेटी को लड़का अपनी मर्ज़ी से अपने आप खोजना चाहिए या कि वे इसके लिए 'इंतज़ाम करेंगे।' ममी की बड़ी बहन की बेटी की शादी जोधपुर रहने वाले एक लड़के से तय हुई थी। यहाँ आने के बाद उसका अजीब-सा ही सलूक रहा और अंततः उसका शादी का हश्र तलाक में हुआ था। तभी से ममी नेहा की किसी हिन्दुतान के लड़के से शादी तय करने को खिलाफ़ थीं।

पर अब नेहा के बड़ी हो जाने के बाद कभी तो वह कह देतीं कि फलाँ आँटी तुमको एक लड़के से मिलवाना चाहती हैं। यह भी साथ ही जोड़ देतीं कि तुम मिलना चाहती हो तो मिलो वर्ना ऐसी कोई ज़बरदस्ती नहीं। ममी कहतीं, "आई डोंट वाँट यू तू ह्युमिलिएटड।"

कभी वह कह डालतीं, "यों ठीक है पढ़ती रहो और नौकरी भी करो पर देखा जाए तो बाइस तेईस साल में शादी तो हो ही जानी चाहिए लड़कियों की। मैं तो इक्कीस भी पूरे नही कर पाई थी जब शादी हुई।"

नेहा को लगा कि ममी के रवैये में बदलाव इस पर भी मुनस्सर करता था कि उन दिनों वे किस से मिल रहीं थी। अपनी अमरीकी सहेलियों से, कुछ पुराने ख़यालों की हिन्दुस्तानी सहेलियों से, या किसी रिश्तेदार से। ममी उनके सवालों और टिप्पणियों से बहुत जल्दी बहक जाती।

इसलिए शायद ममी नेहा से कभी यह भी कह देतीं, "देख हमारा तो जमाना और था यहाँ कोई शादी की जल्दी नहीं मचाता। जब कोई ढंग का टकरा जाए तो कर लो वर्ना अपने काम में लगे रहो। कोई बंदिश तो नहीं। हिन्दुस्तान में तो अब तक सारे रिश्तेदार पीछे पड़ गए होते कि भई लड़की को क्यों अभी तक कुँवारा बैठा रखा है।

और साथ ही जोड़ देतीं, "वैसे तो शादी हो जानी चाहिए लड़कियों की ठीक उम्र में वर्ना न तो अच्छे लड़के हीं बचे रहते हैं और लड़कियों का स्वभाव भी इतना पक्का हो जाता है कि मन माफिक लड़का मिलना ही मुश्किल हो जाता है।"

नेहा को मालूम था कि ममी का इशारा उसकी सहेली अंशुल की ओर था। अंशुल उनत्तीस बरस की हो चली थी। तीन साल पहले एक भारतीय मूल के लड़के के साथ उसका संबंध बढ़ा था और दोनों एक साथ रहने लगे थे। फिर साल भर बाद उस लड़के ने कहा था कि उसका अंशुल से शादी का विचार नहीं। वे चाहें तो यों ही साथ रहते रहें। कभी भविष्य में भी उसका शादी का इरादा होगा इसका भी कोई आश्वासन नहीं था।

अंशुल ने रिश्ता तोड़ लिया था। उसके बाद जो भी रिश्ता बने उसका हश्र कुछ ऐसा ही हो रहा था। एक लैटिन अमरीकी लड़का था जिसके साथ वह शादी नहीं करना चाहती थी। एक काला लड़का था जिससे शादी करने से उसने माँ बाप ने सख़्त विरोध किया था। यों माँ बाप की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ जाकर चाहे वह शादी कर ही लेती पर वह रिश्ता खुद ही टूट गया।

अब वह अचानक उनतीस बरस की उम्र में सन्यासिन बनने की ठान कर बैठ गई थी। न तो अब वह वैसे झमक-झमक गहने पहनती थी न ही चेहरे पर गहरा मेकअप करती। सफ़ेद साड़ी पहन घंटो ध्यान में लगी रहती। उसने अपने अपार्टमेंट में ही एक कोने में मूर्तियाँ रख कर मंदिर बना लिया था।

आए दिन दक्षिण एशियाई सांस्कृतिक कार्यक्रमों को संगठित करती और नारीवाद की हिमायत करती। कितनी कड़वाहट भर गई थी अंशुल में मर्दजात के प्रति। एक उग्रनारीवादी बन कर उसने यही कड़वाहट सारे समाज में फैलाने का बीड़ा उठा लिया था। नेहा उस कड़वाहट से बचना चाहती हैं।

ममी को डर लगता कि ठीक उम्र में नेहा किसी से बंधी नहीं तो पता नहीं किस दिशा में मुड़ जाए। अंशुल का ज़िक्र कर वह कह देती, "यह भी कोई उम्र है सन्यास लेने की। उनत्तीस बरस में तो लड़की सर से पाँव तक गृहस्थी में रमी होती है। तुम्हारी पीढ़ी की तो बातें ही निराली है। कभी तो इतना राग रंग और कभी धूनी रमा लो।"
नेहा हँस देती, "ममी ये सब फ़ैड हैं। कल को अंशुल को कोई मन पसंद लड़का मिल गया तो सन्यास वन्यास सब भूल जाएगी। उसे रोज़ ही जीने का कोई नया मक़सद खोजना होता है।"
"वह तो ठीक है पर कुछ टिकाव भी होना चाहिए ज़िन्दगी में। अब इस उम्र में तो किसी के साथ बंध ही जाना चाहिए न?"
नेहा को खुद भी तो नहीं पता कि सही दिशा क्या हैं।

अपने माँ बाप के तरीके की तयशुदा शादी उसकी कल्पना के बाहर है। बाकी किसी से रिश्ता जोड़ने में वह भी घबराती है। जो भी रिश्ता जोड़ता है उसे अंत तक पूरे चरम तक पहुँचाना होता है। तभी कोई गंभीरता से विवाह की बात सोचता है। और इसी चरम तक आज़मा लेने के दौरान पता नहीं कब क्या चटख जाएगा कि पूरा रिश्ता ही चकनाचूर हो जाता है। उसकी सहेलियों के साथ यही कुछ तो हो रहा है। इसी डर से वह किसी लड़के के साथ गहरी आत्मीयता का रिश्ता नहीं जोड़ पाई। मन के रिश्ते से शरीर के रिश्ते को परे रखना नामुमकिन हो जाता है। बल्कि यह भी एक शर्त हो जाती है कि मन को समर्पित कर दिया तो शरीर क्या चीज़ है। उसे उलझने में हिचक क्यों?

इसी उलझन में उसका शरीर अभी तक कुँवारा है। अतृप्त है। पर वह कब तक खुद को सँभाल कर रखती रहेगी। ममी हमेशा उसे खुद को बचाए रखने के लिए शादी तक कुँवारापन बनाए रखने का पाठ बचपन से पढ़ाती रही हैं।

क्या जब तक सही लड़का नहीं मिलता वह यों ही रहे? केवल शरीर की तृप्ति के लिए शादी के बंधन में पड़ जाना तो अक्ल की बात नहीं। ऐसा नहीं होने देगी वह? नेहा समझ नहीं पाती कि ममी सचमुच मे क्या चाहती है! कभी तो इतने खुले दिमाग वाली अमरीकी महिलाओं जैसी बन जाती हैं तो कभी एकदम दकियानूसी।

उस दिन उसने सुना ममी की एक हिन्दुस्तानी सहेली कह रही थीं, "आजकल तो ज़माना बदल गया है क्या पता कल को लड़की आकर यह कहे कि मैं फलाँ लड़के के साथ रहना चाहती हूँ शादी किए बग़ैर। हमारे रोकने से कोई सुनेंगे भला? मुझे तो ऐसे ख़याल डराते रहते हैं। अगर कुछ ऐसा हुआ तो सारे समाज में बदनामी हो जाएगी।

शायद उन्हीं की बात का असर होगा कि अगले दिन ममी नेहा से पूछ रही थीं, "तेरे दिमाग में कोई लड़का है तो हमे बता दे। अगर तुम किसी के साथ वाथ रहने की सोच रही हो तो हम तुम्हारी मँगनी किए देते हैं। यों ही नहीं रहने दूँगी मैं।"

नेहा खूब सोच रही है, आजकल सोचती ही रहती है कैसे सही रास्ते पर उतारे अपनी ज़िन्दगी। नेहा के पास बहुत कुछ है बताने को! ममी की ऐसी बातें उसे आश्वासन नहीं देतीं और डरा देती हैं।

नेहा अभी किसी से मँगनी नहीं करना चाहती, वह सचमुच सिर्फ़ साथ रहकर देखना चाहती है। अभी उसका शादी में बँधने का इरादा नहीं। फिर भी किसी के प्रेम और साथ से खुद को वंचित नहीं रखना चाहती। ममी ने भी तो इक्कीस की उम्र में शादी कर ली थी। वह तो तेईस पार कर लगभग चौबीस की हो चुकी है। क्या वह ममी को बता सकती है कि वह लड़का साथ ही पढ़ता हुआ एक अमरीकी है? वह इस तरह से महात्वाकांक्षी नहीं जैसा ममी पापा अपने जवाई की कल्पना करते हैं। वह डॉक्टर, इंजिनियर या वकिल कुछ भी नहीं बनना चाहता। वह स्कूल टीचर है और इस देश के बच्चों को स्कूली शिक्षा की अच्छी नींव देने में विश्वास रखता है। उसे बच्चों के साथ काम करना पसंद है और वही कर रहा है, करना चाहता है। कैसे बताएगी उनको? वे तो कैसा मुँह बनाएँगे। ममी सोचेगी कैसा लद्धड़ लड़का चुना है स्कूली टीचर? वह ममी के चेहरे पर आए उतार चढ़ाव की बहुत सही कल्पना कर सकती है। उसके बाद ममी बहुत देर तक उससे बात नहीं करेंगी। सोंच में पड़ जाएँगी। शायद रोएँ धोयें भी कि उनके उम्र भर के ख़याली पुलावों पर पानी पड़ गया। कहाँ उनकी बेटी तो आर्किटेक्ट है और जँवाई स्कूली टीचर?

यों है तो नेहा के ही स्कूल ऑफ आर्किटेक्ट का स्नातक पर सर पर हाइस्कूल के बच्चों का दिमाग दुरूस्त करने का फितूर! ममी शायद किसी को उसके धंधे के बारे में बताना भी न चाहें। उसने ममी की प्रतिक्रियाओं को बहुत पहले से जान लिया है। उसकी एक सहेली के बारे में वे पहले ही कह चुकी है, "नियति खुद ही इतनी ब्राइट और खुबसूरत लड़की है। यह एक स्कूली टीचर के शिकंजे में कैसे फँस गई? नेहा को ममी के कहने के अंदाज़ से बहुत बुरा लगा था। उसने नियति की पैरवी करते हुए ममी को समझाने की कोशिश भी की थी, "ममी वह तो बड़ा आइडियलिस्टिक लड़का है। उसका ढेर सारे पैसे कमाने में विश्वास नहीं है। वह बच्चों की ज़िन्दगी बनाना चाहता है। ममी अगर स्कूली टीचिंग में अच्छे और ब्राइट लोग नहीं जाएँगे तो इस देश के नागरिक कैसे अच्छे बनेंगे? सब कोई युनिवर्सिटी में ही पढ़ने लगें और स्कूलों में न पढ़ाना चाहें तो युनिवर्सिटियों में पढ़ने कौन आएगा?"

ममी ने उसे चुप करा दिया था, "फिक्र मत कर बहुत हैं स्कूलों में पढ़नेवाले। मैं तो सिर्फ़ यह कहना चाहती थी कि नियति उससे कही बेहतर के योग्य है। बाकी सयाना कौवा गू पर ही बैठे तो कोई क्या कर सकता है?"

नेहा फिर भी पैरवी करती ही रही थी, "ममी अभी अगर वह स्कूली टीचर है तो इसका यह मतलब नहीं कि सारी उम्र यही बना रहेगा। यहाँ लोग प्रोफेशन बदलते रहते हैं। कल को युनिवर्सिटी में पी-एच. डी. में दाखिला लेकर बाद में युनिवर्सिटी का प्रोफेसर भी बन सकता है। या जो कुछ भी करना चाहे। यों स्कूली टीचर की तनख्वाह भी कालेज प्रोफेसर से कम नहीं होती बाकी यहाँ हिन्दुस्तान वाली बात नहीं है कि एक बार जो बन गए वही रास्ता सारी उम्र के लिए हो गया।"

"ठीक है ज़्यादा बड़ बड़ मत कर। हर वक्त मुझी को शिक्षा देती रहती है।" ममी को इस बात का भी गुस्सा आता है कि बजाय वे अपनी बेटी को शिक्षा दें उल्टे वहीं उनको भाषण देती रहती है जैसे कि वह अनुभवी दादी अम्मा हो और ममी मात्र एक बच्ची? बच्ची को आज़ादी देने का यह फल मिल रहा है उनको! पर पापा से उसकी इस तरह पेश आने की हिम्मत नहीं होती। पापा से डरती है और उनकी बात ध्यान से समझती भी है। माँ को तो कुछ समझती ही नहीं।

पापा जब उसे सड़क की लय समझा रहे थे तो नेहा को लगा जैसे पापा बहुत कुछ समझते हैं। अब वे उसकी तोतली बोली सुनने की फ़रमाइश भी नहीं करते। ताकि उस बात का अपने ऊपर हँसते हुए ज़िक्र करते हैं कि कैसे उनको यह बोली पहले मीठी लगा करती थी।

पर अब नेहा बड़ी हो गई है और उसे बड़ों की तरह ही बोलना चाहिए। सोचते सोचते अचानक उसकी हिम्मत पड़ गई थी, "पापा ड्राइविंग प्रैक्टिस के बाद मुझे पीटर के यहाँ छोड़ देंगे?"
"पीटर कौन? यह कोई नया दोस्त है तुम्हारा?"
"नया नहीं स्कूल में साथ पढ़ता था अब वह फिर न्यू यार्क में लौट आया है।"
"कहाँ छोड़ना है?"
"फोर्टी फिफ्थ स्ट्रीट पर।"
"क्या जगह? कोई रेस्ट्राँ है?"

"नहीं।"
"रहता हैं वहाँ?"
"हाँ", कुछ हिचक के साथ नेहा ने उगला था छोटासा 'हाँ'
पापा ने हैरानी साफ़ न झलकाते हुए पूछा था,
"तुम उसके अपार्टमेंट में जाओगी?"
"मेरी उससे बहुत पुरानी दोस्ती है।"

पापा का भय, कर्तव्यपरायणता, समझदारी सभी कुछ उनके चेहरे पर भरपूर उतर आए थे। कुछ सचेष्ट संयमित स्वर में बोले, "लेकिन जानती हो न किसी लड़के के अपार्टमेंट में इस तरह जाना क्या वहाँ और भी लोग होंगे?"

"मुझे मालूम नहीं पर शायद मुझी को बुलाया है।" वह चाहती थी कि पापा सच जान जाएँ और सच बोलने की भी हिम्मत नहीं हो रही थी।
पापा जान जाएँ और चुप रह अपनी सम्मति दे दें ऐसी ही भीतरी ख़्वाहिश थी उसकी।
"तो तुम्हारी इतनी दोस्ती है कि?"
"हूँ"
"क्या तुम उससे प्यार करती है?"
"हूँ? मालूम नहीं"
"अगर तुम उसके अपार्टमेंट में अकेली जा रही हो तो तभी जाओ अगर वह इन्सान तुम्हारे लिए ख़ास है, वर्ना कुछ ऐसा वैसा हो गया तो गलत होगा।"
"पापा वह ख़ास तो है।"
"इसका मतलब तुम उसे प्यार करती हो।"
"मालूम नहीं। हम बहुत पक्के दोस्त हैं।"
"या और कोई लड़का तुम्हारा इतना पक्का दोस्त है।"
"नहीं।"
"तो फिर यही तुम्हारा ख़ास है। तुम शायद उसे प्यार भी करती हो। मेरे सामने गवारा करने से घबराती हो।"
"अभी मालूम नहीं कुछ कह नहीं सकती। हो सकता है करती हूँ।"

नेहा हैरान थी यह कैसी बातचीत उसमें और पापा के बीच हो रही है आज? उसे अचानक महसुस हुआ कि पापा की निगाह में वह सचमुच बड़ी हो चुकी है। पापा समझते हैं सब। बस वही घबराती रही है इस तरह की बातचीत से।
"तुम चाहो तो मैं मिल लूँगा उससे।"

"लेकिन पापा ऐसी कोई सीरियस बात नहीं। मैं खुद भी नहीं जानती यह रिश्ता किस तरह का आकार लेगा।"
"पर अगर तुम्हें अपने पर भरोसा या उसके मन का ज्ञान नहीं तो उसके अपार्टमेंट में क्यों जा रही हो? एक बात कहूँ?"
अचानक एक डर का भाव जागा - क्या कहेंगे पापा?
"देखो बेटे मैं खुद चूँकि एक मर्द हूँ। इसलिए मर्द के नज़रिये की ही सलाह दूँगा। कोई भी लड़की इस तरह जब पुरुष के पास जाती है तो पुरुष उसकी कद्र नहीं करता। अपने आप को दुर्लभ बना कर रखो तो देखो कैसे लड़के पीछे भागते हैं।
"पापा! नेहा ने कहना चाहा कि अब तक तो उसने खुद को दुर्लभ ही बना कर रखा हुआ हैं। पर उसे ऐसे कोई पीछे भागने वाले नहीं मिले।

जो आए वे उससे पहले दोस्ती ही करना चाहते थे, उसे जानना चाहते थे अगर वह खुद सबसे दूर रहती है तो आत्मीयता ही कहाँ बनती, दोस्ती ही क्यों कर होती?

नेहा ने गौर किया कि पापा आखिर पापा ही थे। बेटी की अस्मत को लेकर घबराए हुए पर उनका कहने का अंदाज़ रौबीला नहीं दोस्ताना था।
पापा को आश्वस्ति देने का मन हो आया था नेहा का।
"हम लोग साथ-साथ एक प्रोजेक्ट पर भी काम कर रहे हैं।"
"कैसा प्रोजेक्ट?"
नेहा को कहते हुए लगा कि वह झूठ नहीं बोल रही थी। पीटर और उसने इस बारे में काफी लंबी बातचीत कर रखी थी। चाहे आज वह सिर्फ़ इसी बातचीत के सिलसिले में नहीं जा रही थी और भी बहत सी गप्पे मारनी थीं।

कहीं उसे भी अंदाज़ था कि अपने अपार्टमेंट में के सूनेपन में छू भी सकता है और छूने से आगे भी । नेहा सिर से पाँव तक सिहर गई पर इस सिहरन में डर से ज़्यादा चुनौती थी और उसे महसूस हो रहा था कि वह हर तरह की चुनौती के लिए आज तैयार थी। साथ ही वह यह भी जानती थी कि पूरी तैयारी के बावजूद वह पीटर के साथ सिर्फ़ फिल्म का चर्चा करके भी आ सकती थी।
नेहा को भी समझ नहीं आता था कि क्या अच्छा है क्या ग़लत!

वे लोग हाईवे से उतर कर पहले एवेन्यू पर आ गए थे। सामने पीली बत्ती थी। पीछे गाडियाँ आ रही थीं। पापा बोले, "चलती रहो" और समझाने लगे उसे, "पीली बत्ती पर गाड़ी रोकनी होती है पर अगर तेज़ गति से चल रहे हों और अचानक पीली बत्ती हो जाए तो गाड़ी की गति तेज़ कर के निकल जाना चाहिए वर्ना पीछे से उसी तेज़ गति से आती गाड़ी मार सकती है।

फिर अचानक जैसे ध्यान आ गया हो, बोले, "कैसा फिल्म प्रोजेक्ट है?"
"अभी तो उसकी स्क्रिप्ट ही तैयार कर रहे है। सती पर फिल्म बनाएँगे।"

"सती?"
"हाँ, आप इतने हैरान क्यों है?"
"तुम क्या जानती हो सती के बारे में? क्या थीम होगी?"
"हम कहानी को उन्नीसवी सदी में जड़ रहे हैं। उसमें ब्रिटिश सुधारक भी होंगे। वह अंग्रेज़ सती होने वाली हीरोइन को बचा लेता है और फिर उन दोनों के संवादों के बीच से हीरोइन के नज़रिये में बदलाव लाया जाएगा।"
"तुम्हारा मतलब कि वह सती प्रथा का खंडन करेगी।
"पर उसे अपना धर्म बदलना पड़ता है क्योंकि हिन्दू समाज से उसे बहिष्कृत कर दिया जाता है कि वह पति की चिता से उठी क्यों?"
"पर हिन्दू धर्म हर औरत को पति के साथ जल मरने की आज्ञा तो नहीं देता। यह सब तुम्हारे अधकचरे ज्ञान को प्रगट करता है। मुझे तो इस कहानी में तुक नहीं नज़र आ रही।"
"दिस इज पोस्ट कोलोनियल स्टफ। दो बातें है पापा एक तो मैं अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म बनाना चाहती हूँ जो भारत और यहाँ, दोनों को समेटे ताकि दुनिया भर के दर्शक वर्ग को देखने में दिलचस्पी हो। दूसरे सती जैसी बुरी प्रथा पर फिल्म बनानी चाहिए और दुनिया के लोगों का इस पर ध्यान जाए ताकि इसके शमन की ओर कुछ किया जाए, तीसरे यह भी कि विषय ऐसा है कि हमें फिल्म बनाने के लिए पैसा मिलने में भी कम मुश्किल होगी।
"और तुम्हारा आर्किटक्चर?"
"फिल्म के साथ साथ वह भी चलाती रहूँगी। पीटर ने तो इसलिए हार्ड प्रेशर नौकरी छोड़ कर स्कूल में पढ़ाने का काम शुरू कर दिया है। ताकि फिल्म पर वक्त लगा सके। अभी तो शूटिंग की स्टेज आने में बहुत वक्त पड़ा है। अभी स्क्रिप्ट ही पूरा नहीं हुआ।"
उस दिन पापा ने उसे ड्राप कर दिया था। अजीब बात है कि पापा उसे समझते हैं और उसके दोस्त जैसे बनते जा रहे हैं।

जबकि ज्यों-ज्यों वह बड़ी हो रही है ममी का नज़रिया सकुचाया जा रहा है। एक उतावली और घबराहट-सी रहती है उनमें नेहा की शादी के मसले को लेकर। नेहा को लगता है कि यह सब उनकी अमरीका में बसी हिन्दुस्तानी सहेलियों का दबाव है। वर्ना ममी बड़े ही खुले सोच वाली थीं। उसने इस बात पर ममी से आमना-सामना भी किया था। चूँकि अंशुल सन्यासिनी हो गई तुम सोचती हो मेरे साथ की सारी लड़कियाँ पागल हैं? या हो जाएँगी?

"हाँ वक्त पर शादी होना बहुत ज़रूरी है।"
"जो न हो तो?"
"तो बहुत बुरा होगा?"
"क्या बुरा होगा?"
"आखिर ये रिवाज बने हैं तो इनका कुछ मतलब ही है न?"
"मतलब तो यही है न कि बच्चे पैदा करो और गृहस्थी में लग जाओ। पर मैं तो वैसे ही जुटी हूँ नौकरी में। फिल्म बनाने में। मेरे पास गृहस्थी चलाने की फुर्सत अभी कहाँ हैं?" जब हुई तो सोच लूँगी औए कभी न हुई तो कभी नहीं सोचूँगी।"

यही तो मुश्किल है। तुम सोचती हो कि बिना गृहस्थी के सारी उम्र कट सकती है। तभी तुमने मेरे लाख कहने के बावजूद खाना तक बनाना नहीं सीखा।
"ममी मेरे साथ के ज़ादातर लोग खाना बाहर ही खाते हैं। किसी को बनाना नहीं होता। बनाने का शौक हो तो एकाध चीज़ सीखी भी जा सकती है। पर वह ऐसा कोई मस्ट नहीं हैं जैसा तुम समझती है।"
"जा जा, तेरे से बहस कौन करे।"

नेहा ममी के रूख से बेहद परेशान हो जाती थी। कहीं तो ममी दुनिया भर में ढिंढोरा पीटती थीं कि वह अपनी बेटी के साथ शादी की ज़बरदस्ती कभी नहीं करेंगी। अब जैसे उसकी उम्र के हर बढ़ते साल के साथ उल्टे रास्ते पर बढ़ती जा रही हैं।
नेहा का डर सच निकला। ममी ने पीटर के बारे में सवाल पूछ ही लिया।
जब पापा ने उसे पीटर के यहाँ ड्राप किया था उन्हीं दिनों ममी ने भी सवाल पूछा था उस रिश्ते में शादी की गंभीरता का।
ममी को टाल दिया था नेहा ने। पर अपने आप से यही सवाल वह बार बात पूछती थी और पीटर से भी। उस दिन जब पापा ने उसे पीटर के यहाँ ड्राप किया तो वही सब कुछ हुआ जिसका पापा को डर था। और फिर भी उसने सब कुछ नहीं होने दिया क्योंकि पापा की बात कहीं भीतर तक गड़ गई थी। पीटर ने उसका हाथ छुआ ही था कि वह बोल पड़ी, "अगर तुम्हारा शादी का ख़याल नहीं तो मैं इस रिश्ते को आगे बढ़ाना नहीं चाहूँगी। पीटर ने घचके से हाथ पीछे कर लिया था। बहुत देर तक खामोश सोचता रहा था।

फिर पीटर ने उसका चेहरा दोनों हाथों मे लेकर चूम लिया और उसके कंधों को थपथपाता हुआ बोला था, "इतनी टैंस क्यों हो तुम आज? रिलैक्स!"
"रिलैक्स करने का वक्त रहा नहीं। रोज़ किसी न किसी तरह से शादी की बात छिड़ ही जाती है।" खुद को पीटर के स्पर्श से झटककर नेहा ने कहा था।
"तुम सचमुच शादी करना चाहती हो मुझसे?"
पता नहीं नेहा के मुँह से क्या निकला था। ममी पापा की पसंदगी नापसंदगी खुद पीटर के साथ भविष्य को लेकर संदेह कितना कुछ तो था इस जवाब की भूमिका बनता हुआ। वह शायद हाँ कहना चाहती थी पर मन में खीझ सी भरी हुई थी। उसकी ज़िन्दगी का सबसे अहम् फ़ैसला था और उसे समझ ही नहीं आ रहा था कि क्या फ़ैसला ले।
"तो मुझसे क्या उम्मीद करती हो मैं तो फिलहाल शादी वादी का सोचना चाहता ही नहीं। फिर यह भी तो ज़रूरी है कि हम एकदूसरे को भली-भाँति जान लें पूरी तरह से।
"जिस जानने की तुम बात करते हो वह शादी के बाद ही हो सकता है।"
"शादी का फ़ैसला मैं तभी कर सकता हूँ जब कि हमारी हर तरह से कम्पैटिबिलिटी हो।"
"मान लो मैं तुम्हारी बात मान भी लूँ तो क्या गारंटी है कि तुम मुकर नहीं जाओगे?"
"गारंटी तो कभी होगी ही नहीं, शादी के बाद भी नहीं। क्या तुम मुझे गारंटी दे सकती हो कि मुझे छोड़ कर नहीं जाओगी।"
"हाँ पर अगर तुम किसी दूसरी ओर आकृष्ट हो जाओ ता मैं तुम्हारे साथ चिपकी नहीं रहूँगी।"
"खैर ये सब कहने की बातें हैं। अगर गारंटियाँ होतीं तो इतने तलाक क्यों होते?" हमारा रिश्ता आज सुखद है तो कल को बिगड़ भी सकता है। रह कर पता लगता है और साथ रहने से तुम घबराती हो?"
"तुम्हें मेरी मजबूरी का पता है। मुझमें भी तुम्हें खुद को सौंप देने की उतावली तुमसे कम नहीं।"

"और इसके लिए तुम मुझसे शादी जैसी चीज़ में घसीटना चाहती हो। शादी का मतलब साथ रहना उतना नहीं जितना कि दुनियावी ज़िम्मेदारियों को निभाना होता है। ठीक-ठाक घर, ठीक-ठाक साज-सज्जा, ठीक-ठाक बच्चे, सब कुछ ठीक-ठाक होना होता है। मैं अभी इस सबके लिए तैयार नहीं। अगर तुम सचमुच मुझे प्यार करती हो तो उस चक्कर में डालना नहीं।
और फिर बात यहाँ तक पहुँच गई थी कि पीटर जब भी उसे छूने की कोशिश करता वह खुद को जकड़ लेती ताकि भाव में आकर कुछ गलत न कर बैठे। एक बार उसने कह ही डाला था, "क्या बात है मेरा स्पर्श तुममें भी प्रतिक्रिया जगाता नहीं?"

वह यों ही जकड़ी खामोश बैठी रही थी। फिर पीटर से मिलने से कतराने लगी थी। शायद पहले अपने भीतर को सुलझा लेना चाहती थी । किस पर भरोसा करे? पीटर पर या ममी पापा पर? वह खुद क्या चाहती है? अब छे महिने बाद ममी ने फिर वही सवाल दोहराया तो नेहा ने कितने सारे तनावों से एक साथ मुक्ति पाने के लिए बक दिया था, "मुझसे मत पूछा करो यह सवाल! यहाँ के लड़को में कमिटमेंटही नहीं है। मैं क्या करूँ!"

नेहा के चेहरे पर जर्दी और लाली एक साथ आ जा रही थीं। ममी ने भाँप लिया था और किसी अविश्यंभावी खतरे ने उनको सहमा दिया था। नेहा उसे खतरा मानती हो या न पर मन अस्वस्थ ज़रूर हो रहा था। उसने पापा से कहा था, "यहाँ मैनहैटन में गाड़ी चलाने का मौका ही नहीं मिलता इसीलिए कान्फिडेंस ही नहीं जमता। आपको फिर कुछ प्रैक्टिस करानी होगी।"

ममी ने उनके निकलने से पहले कह दिया था, "तू मेरी बात मान तो अभी भी देर नहीं हुई। बात चलाती हूँ, कहीं न कहीं तो काम बनेगा ही।"

इतनी बड़ी आर्किटेक्ट है तू कल उमा कह रही थी कि उसकी सहेली का लड़का भी कुँवारा बैठा है। मीटिंग तय कर दूँ तुम दोनों की? अपने आप से ही बाहर कहीं मिल लो। हमें बीच में डालने की भी ज़रूरत नहीं।" पापा ने ममी को डाँट दिया था, "क्यों बार बात उसे एम्बैरेस करती हो? जब शादी को तैयार होगी अपने आप बता देगी। बड़ी हो गई है। अपने बारे में खुद फ़ैसला ले सकती है। तुम पहले तो उसे यहाँ के खुले ढंग से पालती रही हो। अब क्या फिर से पीछे ढकेलना चाहती हो?"

गाड़ी चलाते हुए नेहा को लगा कि उसकी ड्राइविंग पर पकड़ काफी अच्छी हो गई है। थोड़ी-सी प्रैक्टिस के बाद शायद वह अपने आप ही पूरे आत्मविश्वास के साथ चलाने लगेगी।
अचानक उसने पापा को कहते हुए सुना, "लाल बत्ती पर हमेशा रूका करो। कई बार आस पास ट्रैफिक नहीं होता तो इंसान की प्रवृत्ति होती है कि चलता जाए। पर अगर लाल बत्ती पर सड़क पार करने की ऐसी आदत डाल लो तो अक्सर दुर्घटना होने का ख़तरा हो जाता है। क्योंकि ऐसा मुमकिन है कि आप ध्यान से न देख सकें और अचानक कोई गाड़ी कहीं से निकल कर आपसे टकरा जाए।" और पापा ने दोहराया, "सो लाल बत्ती के होते सड़क पार कभी मत करना यह चेतावनी तुम्हें बार-बार देता हूँ।"

नेहा चौंकी। पापा उसे क्यों बतला रहे थे यह सब। क्या उसने सचमुच लाल बत्ती पार की थी? या पापा का उसे आगाह करते रहना क्या पिता के धर्म पालन से ज़्यादा नहीं था? पापा के अपने मन के डर। कहीं ऐसा तो नहीं कि बत्तियाँ आए जाए, चली जा रही थीं, गाड़ियाँ निकले चली जा रही थीं और वह लाल बत्ती पर ही खड़ी थी।

पापा कहते चले जा रहे थे, "यों तुम सीख तो गई हो अब। अच्छा चलाने लगी हो। बाकी जितना चलाओगी उतना ही आत्मविश्वास भी बढ़ेगा। बस सड़क की लय सुनना मत भूलना यही एक अच्छे ड्राइवर की निशानी है। वर्ना बार-बार दुर्घटनाएँ होंगी। इस देश में अपने बूते जीने के लिए गाड़ी चलाना भी उतना ही ज़रूरी है जितना पढ़ना लिखना। इसलिए ज़रूरी है कि सड़क की लय को सुने को सुने और उसी हिसाब से चलाओ ताकि सेफ ड्राइवर बन सको।

सहसा नेहा को लगा जैसे जो पापा कह रहे हैं वह सुन नहीं रही है फिर भी कुछ सुन रही है। पर जो वह सुन रही है वह शायद पापा नहीं सुन रहे हैं या शायद पापा कह भी नहीं रहे पर नेहा सुन पा रही है। कुछ ऐसा जिससे न वह वाकिफ़ थी न ही जिसके प्रति सजग। जैसे वे स्वर कहीं दूर से किसी बहुत गहरे समुद्र से उठे हों बहुत अस्पष्ट, भारी और गीले से! अपने ही बोझ से झुके कि सतह पर आएँ भी तो जलराशी में निमग्न पहचान से बाहर जो किन्ही शब्दों में नहीं ढल पाते या सुने जाते। किसी लहर की ही तरह कहीं से उठते और वहीं समा जाते हैं।

क्या वही थी सड़क की लय!
पापा कह रहे थे, "तुम मुझे पहले घर ड्राप कर दो, इसके बाद जहाँ जाना है चली जाना।"
पर यह तो पापा की आवाज़ नहीं थी। कुछ ऐसी आवाज़ थी कि लगता था उसकी अपनी आवाज़ से ही मिलती-जुलती है। सामने हरी बत्ती भी शायद।
नेहा ने गाड़ी चला दी...

(९ जून २००१ को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)

हवन शेष उर्फ़ किरदारों के अवतार

उस पहली जनवरी को जितनी ज़ोरदार बर्फ़ गिरी थी, कोई सौ बरस से वैसी बर्फ़ उस इलाके में न गिरी होगी। यों समाचारों में था कि बर्फ़ीला तूफ़ान आएगा। पर तूफ़ान की सूरत इस क़दर हैरतनाक होगी, इसका अंदाज़ किसी को न था। इसीसे जब हवन का न्यौता मिला तो किसी ने यह सवाल भी नहीं उठाया कि कार्यक्रम में कुछ बदलाव किया जाए। यों भी आजकल बर्फ़ तो आए रोज़ गिरती ही थी। आख़िर सर्दी का मौसम था।

सुबह जब सब अपने घर से चले तो आसमान भरा-भरा-सा तो था, लगता था कि कुछ होगा। पर इस तरह के भयंकर हालात का अंदेशा सचमुच किसी को न हुआ था। अब तो बाहर यह हाल था कि तेज़ सरसराती हवाएँ और बर्फ़ की दनादन बारिश रुकने का नाम ही नहीं ले रही थी। चारों ओर सफ़ेदी के अलावा कोई रंग ही नहीं रह गया था। सड़कें, मकान, पेड़-पौधे, धरती का हर हिस्सा बर्फ़ से पुता था। सारे माहौल में तूफ़ानी भयावनापन था तो श्वेतता की सात्विकता उस डरावनेपन में एक निराला-सा सौंदर्य घोले दे रही थी। गुड्डो ने हमेशा की तरह इस पहली जनवरी को भी अपने घर पर हवन किया था। सारा परिवार इकठ्ठा हुआ था। घर की खुली-सी बैठक में हवन का इंतज़ाम था। यह अपार्टमेंट की बैठक नहीं थी। शहर से कुछ दूर हरियाले-से हिस्से में घर लिया था।

खूब बड़ा घर था गुड्डो का। राजू और उसकी बहू भी साथ रहते थे। गुड्डो की नन्हीं-सी पोती थी उर्वशी। वह गुड्डो की गोदी में बैठी सबको टुकुर-टुकुर निहार रही थी। यों बार-बार वह कोई न कोई शरारत करने से बाज़ नहीं आती थी। कभी सामग्री बिखेरती तो कभी हवन की आग को छूने की कोशिश वह लगातार करती थी और दादी उसे और भी कस कर अपनी गोदी में समेट लेती थी। जब तक हवन होता रहा किसी ने बाहर ध्यान नहीं दिया कि बर्फ़ का क्या हाल था। मंत्रपाठ के बाद सब बहनों ने मिल कर भजन गाएँ, शांतिपाठ हुआ। घर के अंदर की सारी हवा घी, धूप, सामग्री और हवन के सुगंधित धुएँ से महक रही थी। उस महक को साँसों से भीतर खींचते हुए प्रसाद से मिले सूजी के दानेदार मुलायम और चिकने हलवे को छकने का ख़ास मज़ा आ रहा था सबको। जैसे कि ताज़ी गिरी बर्फ़ का ठंडा भुरभुरापन उनके हाथों में पड़ते ही गुनगुना हो गया है।

देखते ही देखते मेज़ पर खाना भी लग गया था। पूरियाँ तलने की महक हवन की गंध पर हावी होने लगी। सब लोग मेज़ के ईद-गिर्द जमा होने लगे। गुड्डो ने दहीबड़े, गोभी की सूखी सब्ज़ी, रसेदार आलू, खट्टे चने और खट्टा कद्दू बनाया था। सब पूरी के साथ खानेवाली चीज़ें। खाना मेज़ पर लगते-लगते ही सब टूट पड़े जैसे बस इसी के इंतज़ार में बाकी कुछ सह लिया हो! तनिमा-अनिमा, राधिका-कनिका सभी के नन्हें-मुन्ने भी खूब चिल्लपो मचा रहे थे। तनिमा का पति अनुज और 'हवन' की लेखिका तथा कुछ और लोग थोड़ी दूर को हट कर बात करने लगे कि जब तक दूसरे खाना ले लें और मेज़ के गिर्द कुछ जगह खाली हो!

अनुज ने शुरु किया, "मैंने अभी-अभी 'हवन' पढ़ा। मुझे अपनी सास के बारे में बहुत कुछ समझ में आया जो कि पहले नहीं समझता था। लेखिका हैरतंगेज़-सी, ख़ामोश सुन रही थी। अनुज ने फिर कहा, "सचमुच। उनके चरित्र के बारे में बहुत कुछ मुझे समझ आया है।"

लेखिका ने कुछ ग़ौर से उसकी ओर देखा, "लेकिन. . ."

"ख़ासकर गहनों वाली बात. . ."

"क्या?"

"गुड्डो अपनी बेटी से कहती है कि ससुराल गहने ले कर न जाए, सास रख लेगी। अब समझ में आया कि तनु क्यों अपने सारे गहने यहाँ लाना चाहती थी।"

"लेकिन मुझे तो इस सब का कुछ मालूम नहीं। मैं तो अपनी कल्पना से. . ."

"यह कैसे हो सकता है यह तो हूबहू बोलने का ढंग भी. . ."

वह हक्की-बक्की अनुज को देख रही थी जबकि पिंकी टपक कर उनकी बातचीत में शामिल हो गई। एकदम गुस्से में बोली, "यैस यू हैव बीन वाशिंग डर्टी लांडरी इन द पब्लिक। तूने तो यह दिखाया है कि पिंकी ने गुड्डो को घर से निकाल दिया। मैंने थोड़े न उसे घर से निकाला था? तूने जिस तरह से ज़बरदस्ती घर से निकालने की बात की है ऐसा तो नहीं हुआ था। सच को इस तरह मत मरोड़ो।"

"सच कौन लिख रहा था। मैं तो कहानी लिख रही थी।"

"कहानी लिख रही थी तो हमारी कहानी क्यों लिखी? कुछ और लिखना था।"

"मैं कहानी को किसी अनुभव पर आधारित करना चाहती थी ताकि उसमें सच्चाई का रंग हो, खुशबू हो, कि वह विश्वसनीय लगे, सिर्फ़ कपोल कल्पना वाली कहानियाँ मुझे अच्छी नहीं लगती, उनमें जीवन रस नहीं होता।"

"तो जीवनरस भरने के लिए तुझे हमारा जीवन मिला था. . ."

"आपका जीवन तो खूब बड़ा, खूब लंबा-चौड़ा है और वैसा ही रहे। मैं तो एक दिलचस्प टुकड़े की खोज में थी जो एक ख़ास तरह के जीवन का, तौर-तरीके का नमूना यानि कि प्रतिनिधि बन सके इसलिए कुछेक. . ."

"तो हम ही मिले थे तुझे?"

"नहीं आप की बात नहीं, मैं तो अपने आसपास से खोज रही थी - जिसे पहचान सकूँ, समझ सकूँ जो मेरे अपने अनुभव के क़रीब हो।"

"तो तेरे रिश्तेदार होने का हमें यह नुकसान हुआ कि तू हमी को आसपास. . ."

"नहीं मेरा यह मतलब नहीं, मैं आपको लेखक की रचना-प्रक्रिया समझाने की कोशिश कर रही हूँ। अनुभव तो एक बेस होता है जिस पर उपन्यास की इमारत खड़ी की जाती है, उसमें कल्पना, शिल्प यानि कि उसमें बहुत कुछ ऐसा है जो अनुभव से इतर है, मेरा मतलब कि प्रामाणिक तो वह भी है, मेरा मतलब कि जो कल्पना से लिया जाता है उसमें भी प्रामाणिकता यानि कि सच्चाई तो रहती ही है, सच्चाई जिसे कि काव्य-सत्य भी कह सकते हैं, यानि कि ज़रूरी नहीं कि वह घटना सचमुच किसी के साथ घटी ही हो पर लेखक के अनुमान में वह घटनीय है, यानि कि किसी के भी साथ घट सकती है, चाहे वह आपके या मेरे साथ व्यक्तिगत रूप से घटी या न घटी हो, और शायद कभी आपके या मेरे जान-पहचान वाले के साथ न ही घटी हो पर संभावनीय हो, तो मेरा मतलब है कि. . ."

सच तो यह है कि लेखिका अपनी बात समझा नहीं पा रही थी और और उलझी जा रही थी लेखकीय शब्दजाल में। भला रचना-प्रक्रिया जैसा शब्द, वह भी संस्कृतनुमा हिंदी का, भला किसी के पल्ले पड़ सकता था उस पंजाबी-अमरीकी परिवार में। वह तो भूल गई थी कि कब, क्या और क्यों और कैसे लिखा था उसने 'हवन'।

'हवन' के प्रकाशित होने के कई साल बाद यह बातचीत हो रही थी। वह तो कबकी इस किताब से बाहर आ गई थी और अब किसी दूसरे उपन्यास में जी रही थी। लेकिन परिवार वालों ने उसकी ख़्याति फैल जाने के बाद पढ़ने की ज़रूरत समझी थी। इसलिए उनके लिए यह सब ताज़ा-ताज़ा ही घटा था और अगर लेखिका ने लिखा है तो लिखने वाले को तो अपना हर लिखा हुआ हर्फ़ याद होना ही चाहिए!
न ही पिंकी में वह सब सुनने की ताब थी। वह बोलती गई, "अपनी शोहरत के लिए कहानी लिखनी थी। हमें क्यों निशाना बनाया?"
तनु झमकती हुई आई और अनुज के गले में बाहें डाल इतराती हुई बोली, "जब से आप का 'हवन' पढ़ा है, अनुज मुझसे लड़ाई करता रहता है। तू ऐसी है, तेरी माँ ऐसी है, तेरा खानदान ऐसा है। इसको तो मुफ़्त में मसाला मिल गया है मुझसे लड़ने का। आप तो हमारा डाइवोर्स कराओगे!"
पिंकी लेखिका को कंधे से झिंझोड़कर बोली, "मुझे यह बता तूने खुद को किरदार क्यों नहीं बनाया। हमीं को क्यों बनाया। तीन बहने दिखाई है। चौथी कहाँ गई? मर गई चौथी? ज़रा देखते उसके बारे में क्या कहती?"

लेखिका मुस्कुराते हुए धीरे से बोली, "चौथी तो लिख रही थी बाकी तीनों के बारे में. . ."
"वही तो, अपने को भी एक कैरेक्टर बनाना था और दिखाना था कि कितनी घटिया है जो गंदी लांडरी धोती है घर की!"
गीता जो यों चुपचाप रहती थी और कभी किसी से लड़ती या ऊँचे बात नहीं करती थी, धीरे से लेखिका के कान के पास जाकर बोली, "वैसे यह तूने अच्छा नहीं किया। मैं तो इनको कभी भी तेरी किताब न पढ़ने दूँ, हमारे घर में तूफ़ान मच जाएगा। मैं तो इनसे छुपा-छुपा के रखती हूँ तेरी किताब। मैं पूरी पढ़ने के बाद घर पर रखूँगी ही नहीं तेरी किताब कि इनके हाथ न पड़ जाए।"
गुड्डो जो गरम-गरम पूरियाँ तलने में लगी हुई थी, मेज़ पर पूरी की थाली रखने आई और देखा कि अभी भी सब लेखिका को घेरे थे तो वह भी उनमें शामिल हो गई।

"यह तूने मेरा जुनेजा के साथ अफ़ेयर क्यों दिखा दिया। उसकी बीवी उससे लड़ती है कि वह मेरे साथ अफेयर कर रहा था। देख तो कैसे बैठे-बिठाए मुसीबत डाल दी तूने। अब वो मेरी मदद को भी नहीं आएगा। वह तो कहता है कि मैंने उसे फ़ालतू में बदनाम कर दिया।"
"लेकिन मुझे तो मालूम भी नहीं कि मैं तो गुड्डो का कोई प्रेमी दिखाना चाहती थी। यह उपन्यास की रचना की एक ज़रूरत थी। वही जो काव्य-सत्य की बात कर रही थी मैं। उसका आपसे तो कुछ वास्ता नहीं था। मेरा मतलब वह तो कल्पना की बात थी।"
"क्यों! तूने तो सचमुच का डाक्टर दिखाया है, उसे मैं जानती हूँ। उसने हमारी मदद भी की है। यह सब तो ठीक था ही पर तूने मनमर्जी से प्रेम-संबंध भी करा दिया।"
लेखिका ने ग़ौर किया कि गुड्डो के भीतर अचानक कोई तार जैसे छिड़ गया था।
शायद कुछ दबा भीतर हो जिसे 'हवन' में अभिव्यक्ति मिल गई हो - लेखिका ने सोचा और स्वाद लिया गुड्डो के शांत जल में पत्थर फेंकने का।

एक तरफ़ उसे सबकी टिप्पणियों का आनंद आ रहा था, दूसरी ओर मन होता सिर पीट ले अपना। किसको क्या समझाए आख़िर! जो ख़ुद नहीं लिखता क्या वह लिखने की

सारी यात्रा, प्रक्रिया या सार्थकता को कभी समझ सकता है! खीझ भी हुई कि कैसे अनपढ़ों के बीच फँस गई थी। जिनको उसने अनपढ़ कहने का मन ही मन साहस किया था वे सारे के सारे इस समाज के सबसे ज़्यादा पढ़े-लिखे लोग माने जाते थे - डॉक्टर, इंजीनियर, कारपोरेशंस में बड़े-बड़े ओहदोंवाले!

बर्फ़ अभी भी तेज़ी से गिर रही थी। सर्दी के मारे खिड़कियाँ-दरवाज़े सब बंद थे। पूरियाँ तलने से कमरे में धुआँ और चिकनी गंध भरती जा रही थी। मसालों की गंध तो वहाँ पहले से ही भरी थी। खाना खा कर सब निकलने को तैयार थे। पर फुटभर बर्फ़ में से निकलने की तैयारी किसी ने नहीं की थी। दरअसल ऐसे भारी तूफ़ान की ख़बर मौसमवालों के पास भी नहीं थी। अचानक तूफ़ान हवाओं के साथ न्यूजर्सी की ओर मुड गया था।

राजू जो अब एक सफ़ल डॉक्टर था, माँ से बोला, "मुझको तो हस्पताल पहुँचना ही है। ड्राइव वे से बर्फ़ हटानी होगी।"
वह जाने को ही था कि अणिमा लेखिका की ओर मुख़ातिब हो बोली, "आपने राजू का क्या कर दिया। बेचारे को ड्रगडीलर बना दिया। आपने ऐसा क्यों किया?"
"हाँ और राधिका को मार दिया।" राधिका ही कह रही थी। मुझे मालूम है कि वह मैं हूँ पर आपने मेरे किरदार को बदल दिया है।" राधिका भी अब डैंटिस्ट बन चुकी थी और खूब प्रैक्टिस चल रही थी उसकी।
लेखिका हँस रही थी, "अगर वह कोई बदली हुई लड़की ही है तो तुमने यह क्यों सोचा कि वह तुम हो?"
"क्योंकि गीता की दो बेटियाँ दिखाई है तो मेरे अलावा और कौन हो सकता है?"
"वाह! क्या खूब तर्क है!"
तभी लेखिका का अपना बेटा आगे आया, "ममी ने राजू तो मेरे बचपन पर बेस किया है। मैं ही देखा करता था ऐसे टीवी, राजू का तो खाली नाम ही दिया है। सच है न ममी?"
लेखिका ने उसके कहे को नज़रंदाज़ करते हुए राधिका से कहा, "पर तुमने तो कभी अपना नाम बदलने की बात नहीं की?"
"हाँ वह शायद आपने किसी और का कैरेक्टर मुझमें मिला दिया।"
"तो फिर तुम्हारा कैरेक्टर वह हुआ कैसे?"
अब गीता बीच में आई बेटी की तरफ़दारी का ज़िम्मा लिए, "वही तो बात है। तूने हमारे कैरेक्टर्स लिए पर उनको पूरी तरह नहीं लिया, उठा के बदल दिया।"
"आपका मतलब है मैं अपने परिवार की कथा कह रही थी। सचमुच अगर मैं परिवार की जीवनकथा कह रही होती तो ज़रूर आप ही के चरित्र उठाती। पर मैं तो उपन्यास लिख रही थी।"
"ठीक है उपन्यास तू लिख रही थी तो फिर हम पर क्यों लिखा?"
"आप पर तो नहीं लिखा। मैं तो कहानी लिख रही थी। अब अगर उनमें आपको कुछ बातें अपने साथ घटित हुई जैसी लगे तो यह तो बहुत से दूसरे लोगों ने भी कहा है। मेरा घटनाओं का चुनाव तो जीवनरस के ही मुताबिक़ होना था न। नवों रस समाहित है उस जीवनरस में, लड़ना-झगड़ना, प्यार-मुहब्बत, हँसना-रोना, नफ़रत-भक्ति, वीरता-डरपोकपन, मोह-विरक्ति, सभी कुछ। कभी कोई घटना तो कभी कोई सारे जीवन-रंग लाने थे न!
अब पिंकी और भी गुस्से में आई, "तू मना नहीं कर सकती कि कहानी तो तूने हमारी ही ली है। वर्ना इतनी समानता थोड़े ही हो सकती है। ये तूने ठीक नहीं किया। तुम्हें इसका फल भुगतना होगा।"

लेखिका को भी गर्मी आ गई, "तुम कहना क्या चाहती हो?"
गुड्डो बोली, "ईश्वर तुम्हें सज़ा देगा!"
"अरे यह तो आपने 'हवन' का संवाद मारा।" अचानक लेखिका के चेहरे पर मुस्कान बिखरी।
"हाँ तो मेरे संवाद तूने 'हवन' में ले लिए हैं तो मैं क्या करूँ। मैं तो ऐसे बोलती ही हूँ।"
सारे परिवार ने लेखिका को घेर लिया था और हर तरह से सब बड़े हिंसात्मक हो रहे थे। सतिंदर जो अब तक चुपचाप सारा खेल देख रहा था, अचानक बोला, "सँभल के भई ज़रा सँभल के। अब वह इस सारे किस्से की भी कहानी बना देगी। तुम सब इसे कोई भी अपनी निजी बात मत बताना।"
गुड्डो ने झट से जवाब दिया, "अब घर की बातें घरवालों से छिपाई कैसे जा सकती है। जो कुछ हो रहा है इसके सामने है।"
फिर दुबारा बोली, "अब यह तो इसी का फ़र्ज़ बनता है न कि घर के भेद न खोले! सचमुच घर का भेदी लंका ढाए। यह भी विभीषण है विभीषण!"

लेखिका ने थोड़ा तेज़ आवाज़ में कहा, "तो कौन-सी लंका ढह गई।"
"ढह ही गई। अब सारी दुनिया पढ़ रही है हमारी भी रामायण।"
"वह तो अच्छा हुआ, आपकी कहानी तो अमर हो गई। आपको तो खुश होना चाहिए।"
अब गुड्डो मुस्कुरा पड़ी, "हाँ यह तो है। मेरी तो कुछ दोस्तों ने भी यह कहा कि आप पर तो किताब लिखी गई है। आप तो ज़रूर कोई बड़ी चीज़ है। यह तो सच है कि किसी पर किताब लिखी जाए तो लेकिन मेरा नाम तो बदला हुआ है।"
पिंकी ने कहा, "तो क्या हुआ, कहानी तो आपकी है न। मुझे तो अफ़सोस इस बात का है कि आपको तो इसने अच्छी रोशनी में दिखाया है, मुझे तो खलनायिका दिखाया है कि मैं आपको घर से निकालती हूँ। भला यह बताओ कि मैंने आपको घर से कब निकाला। आप ने इसे झूठ बताया।"
"ले, मैंने कब कहा कि घर से निकाला। मैंने तो इससे कोई बात ही नहीं की। यह तो इसने अपने मन से लगाया है। क्यों मैंने तुझे बताया था क्या।"
"नहीं, आपने नहीं बतलाया पर मुझे अपनी नायिका को घर से निकलवाना ही था ताकि यहाँ की ज़िंदगी के कुछ दूसरे पक्ष भी दिखाए जा सके। मुझे क्या मालूम कि. . ."
गुड्डो बोल पड़ी, "पर वैसे इसने निकाला तो था। बात तो तूने सच ही लिखी है। अब चाहे धक्के देकर न निकाला हो पर हालत तो ऐसी हो ही गई थी।"

पिंकी चिल्ला पड़ी, "चुप करो। फ़ालतू में मुझे बदनाम मत करो। एक तो आपको वहाँ से बुलाया। आपके बच्चे इतने बढ़िया सेटल हो गए हैं। अब और क्या चाहिए आपको? सबसे ज़्यादा तो आपके बच्चे कमा रहे हैं। घर ख़रीद लिया है, अमीर हो गए हो इतने! शुक्रिया करने के बजाए यह आपकी असलियत दिखाता है। कि आप घटिया इंसान हो!"
गुड्डो को भी जोश आ गया था, "मुझे घटिया मत कहो। मैं तुम सबसे बड़ी हूँ। सबको अपने हाथों से पाला है मैंने। तमीज़ से रहो। मैं तुझे यह कह सकती हूँ। अभी भी तू ठीक बर्ताव नहीं करेगी तो मैं तुझे सिखा सकती हूँ। होगा अमरीका पर मैं अभी भी तेरी बड़ी बहन हूँ। मेरा हक बनता है तुझे सिखाने का, ऐसी बातें मत बोल मुझे।"
"पिंकी,हमेशा अपने बड़े होने का रौब मत मारा करो मुझ पर। यहाँ यह सब नहीं माना जाता। बड़े-छोटे सब बराबर है। यहाँ तो अपने बच्चों को भी बुरा-भला कहो तो ये लोग जेल में डाल देते हैं। आप कहाँ की मूली हो!"
गुड्डो रोने लग गई तो अणिमा ने माँ को सहारा देते हुए पिंकी से कहा, "आँटी आपको ममी से ऐसे नहीं कहना चाहिए था। आपको मालूम है वह चाहे कितना भी बदली हो पर पूरी अमरीकी नहीं हो सकती। बड़े-छोटे का फ़र्क अब भी उनके लिए मायना रखता है। उनको ऐसी बातें बुरी लगती है। आपसे बड़ी तो वे हैं ही।"

पिंकी ने बेपरवाही से कहा, "यहाँ रहना है तो उन्हें बदलना होगा।"

पिंकी ने अनमने में बहुत गहरा घाव किया था। गुड्डो बड़ी थी और छोटों से सिर्फ़ इज़्ज़त पाना उसका हक था। उसने खुद भी अपने से बड़ों को वह हक दिया था अब अपना हक कैसे छिनने देती।
कोने में अभी तक ख़ामोश बैठी खा रही थी, कनिका जो कांजीवरम की कत्थइ बार्डरवाली गहरी हरी साड़ी पहने और जूड़ा बाँधे चुपचाप सारा खेल-झगड़ा देख कर सुन रही थी। ज्यों ही उसने गुड्डो को रोते देखा तो प्लेट मेज़ पर रखकर उसके पास आ गई।
"आपको इसका बुरा नहीं मानना चाहिए। अब मुझी को देखिए न! मुझे भी आँटी ने अपने उपन्यास की पात्र बनाया है। मेरा एक काला ब्वाय-फ्रेंड बना दिया है। कहने को मैं भी बहुत कुछ कह सकती हूँ। लड़-झगड़ भी सकती हूँ, पर मुझे मालूम है कि वे तो आराम से मुकर जाएगी और मैं ही बुरी पड़ जाऊँगी। यों यह भी सच है कि मैं कोई सबसे अलग तो हूँ नहीं। मेरे जैसे और भी बहुत से होंगे। फिर जाने किस-किस की वह कहानी हो!"

गुड्डो अचानक कुछ आत्मसजग-सी हो आई, "नहीं जी बुरा कौन मानता है। इसे कहानी लिखना तो आता है। अब यही सब अगर हमारे साथ हुआ तो हमें भी तो मालूम था। फिर हम क्यों नहीं लिख सके उपन्यास। यह तो मानना ही पड़ेगा कि इसने कुछ नहीं को बहुत कुछ बना दिया। हमारे साथ तो रोज़-रोज़ ही कुछ न कुछ होता ही रहता है। इसने बना दी तो वह कहानी बन गई वर्ना याद भी नहीं रहती बातें।"
लेखिका ने हैरानी से कनिका को देखा और सोचा वह सचमुच बहुत समझदार हो गई थी। किसी ने खिड़की से बाहर झाँकते हुए कहा, "तूफ़ान थम गया है।"
इससे पहले कि दूसरे ज़्यादा किस्से में उँगलियाँ डालते, लेखिका अपने पति से बोली, "खाना हो गया। अब घर चलें।"
पति ने कहा कि अभी तो बर्फ़ गिर रही है। पर लेखिका तो कोट पहन बाहर बरामदे में आकर खड़ी हो गई और पति से बोली, "इतनी थोड़ी-थोड़ी तो शायद देर तक चलती रहे। कम से कम हाइवे तो साफ़ हो ही गई होगी! नहीं, मैं अब यहाँ एक मिनट भी नहीं रुक सकती। वर्ना जाने कितने किरदारों के भूत पैदा हो जाएँगे देखते-देखते!"
पति ने हँसकर कहा, "किरदारों के भूत या अवतार?"
"एक ही बात है न?"
"एक कैसे हुई?"
"भूत? नहीं नहीं, अवतार!"

(१ जनवरी २००५ को अभिव्यक्ति में प्रकाशित)